१९७७ — ७८

वीरायन

"यदि दुनिया में कोई ऐसी वस्तु है, जिसे पाप कहा जा सकता है, तो वह है—'भय'। जान लो कि जिस किसी काम से तुममें गुप्त शक्ति पैदा हो, वह पुण्य है; और जो तुम्हारे शरीर और मन को निर्बल बनाये, वह सचमुच पाप है। इस निर्बलता और इस हृदय-दुर्बलता को दूर भगाओ।

यदि तुम लोग, ऐ मेरे बच्चों! दुनिया को यह संदेश पहुँचा सको कि, "क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते"—तो ये सारे रोग, शोक, पाप और विषाद तीन दिन में धरती से निर्मूल हो जायें। दुर्बलता के ये सब भाव कहीं नहीं रह जायँगे। इस समय सर्वत्र है—भय के स्पन्दन का यह प्रवाह। प्रवाह को उलटा दो; उलटा स्पन्दन लाओ, और देखो, जादू का रूपान्तर! तुम सर्वशक्तिमान हो—तोप के मुँह तक जाओ, जाओ तो, डरो मत। अति अधम पापी से घृणा मत करो, उसके बाहर को मत देखो। दृष्टि को अन्तर्मुख करो, जहाँ परमात्मा का निवास है।"

—स्वामी विवेकानन्द

नीराजन

पं० दीन दयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर, वार्षिक-पत्रिका १९७७-७८

वन्दना

वन्दे जननी भारत धरणी शस्य श्यामला प्यारी,
नमो नमो सब जग की जननी कोटि-कोटि सुत वारी।

उन्नत सुन्दर भाल हिमाचल, हिममय मुकुट विराजे उज्ज्वल,
चरण पखारे विमल सिन्धु-जल, श्यामल अञ्चलधारी।

गंगा, यमुना, सिन्धु, नर्मदा, देती पुण्य पीयूष सर्वदा,
मथुरा, मायापुरी द्वारिका, विचरे, जहाँ मुरारी ॥१॥

कल्याणी तू जग की मित्रा, नैसर्गिक सुषमा सुविचित्रा,
तेरी लीला सुभग पवित्रा, गुरुवर, मुनिवर धारी।

मंगल करणी संकट हरणी, दारिद हर विज्ञान वितरणी,
ऋषि मुनि शूरजनों की जननी, हरणि भूमि-तम भारी ॥२॥

शक्ति-शालिनी दुर्गा तू है, विभव पालिनी लक्ष्मी तू है,
बुद्धि दायिनी विद्या तू है, सब सुख सिरजनहारी

जग में तेरे लिये जियेंगे, तेरा प्रेम पियूष पियेंगे,
तेरी सेवा सदा करेंगे, तेरे सुत बल धारी ॥३॥

वन्दे जननी...................... ....

नीराजकों से

—चन्द्रपाल सिंह

तुम सब लोगों के बीच न रह पाने पर भी भगवान की कृपा से **'नीराजन'** के माध्यम से तुम्हें सम्बोधित करने का अवसर मिला है। मेरे पास तुमसे कहने को कोई नई बात नहीं है, क्योंकि वास्तव में इस सूर्य प्रकाशित पृथ्वी पर नया कुछ भी नहीं है। There is nothing new under the sun. वही चिर पुरातन वेश बदल-बदल कर नये रूप में आता रहता है। मैंने अपने सम्बोधनों में जो कुछ अब तक कहा है उसी को दुहरा दूँ।

तुम माँ भारती के नीराजन हेतु इस विद्यालय में प्रविष्ट हुये हो। अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक तुम्हें यहाँ रहना है। इस बीच यह नीराजन मात्र माँ भारती का न रह कर भारत माता के नीराजन में परिणत हो जाये—यह हम सब की साधना का लक्ष्य रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक नीराजक में कुछ उपयुक्त गुणों का विकास हो। वे गुण हैं—प्रखर राष्ट्र-भक्ति, चारित्रिक शुद्धता, ध्येय-निष्ठा, परिश्रमशीलता एवं निस्वार्थ सेवा भावना। यह विकास सम्पन्न होता है आचार्यों की देख-रेख में विभिन्न शारीरिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा एक अनुशासन पूर्ण शान्त वातावरण में। परन्तु स्मरणीय यह है कि ये सभी बाह्य उपादान हैं। मूल कारण तो स्वयं नीराजक ही हैं। जब तक स्वयं छात्र के हृदय में इच्छा नहीं होगी कुछ करने को, कुछ बनने को, तब तक आचार्य, कार्यक्रम और वातावरण प्रभावहीन रहते हैं। अतः यदि तुम इस विद्यालय मे रहने का पूरा लाभ उठाना चाहते हो, संसार में अपना जीवन सार्थक बनाना चाहते हो, साथ ही अपने माता-पिता द्वारा अपने ऊपर व्यय किये जाने वाले धन का सदुपयोग करना चाहते हो तो अपने हृदय में इस इच्छा को प्रबल बनाओ कि मैं इस विद्यालय का एक अच्छा छात्र बनूँगा। यह इच्छा अहर्निश तुम्हारी गतिविधियों को प्रेरित करती रहे। इच्छा में बड़ी शक्ति होती है, यह सारा विश्व ईश्वर के संकल्प अथवा इच्छा से ही उत्पन्न हुआ है, व्यक्ति भी अपनी इच्छा से ही अपने भविष्य का निर्माण करता है। इच्छा जितनी बलवती होगी उतनी मात्रा में ही वह फलवती भी होगी। इच्छा को बलवती बनाने का उपाय भी अपने ही हाथ में है। उस इच्छा पर लगातार मनन करना तथा उसके अनुसार अपने जीवन को ढालना और साथ ही उस इच्छा के प्रतिकूल विचारों को अपने अन्दर न आने देना—यही उपाय है उस इच्छा को बलवती बनाने का। मनो-विज्ञान में आत्म-निर्देश (Auto suggestion) का बड़ा महत्व है। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ने आत्म-सुधार के आकांक्षी व्यक्ति को यह सलाह दी है कि वह प्रतिदिन सोने के पूर्व अपने संकल्प पर ध्यान केन्द्रित करे तथा बार-बार अपने आप से कहे कि—

Every day in every way I am getting better and better,

अर्थात् प्रतिदिन सब प्रकार से मैं अधिक से अधिक अच्छा होता जा रहा हूँ। इस आत्म-निर्देश के शब्दों में प्रत्येक नीराजक अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर वांछित फल प्राप्त कर सकता है।

आशा है मेरे सभी बाल एवं किशोर नीराजक बन्धु इस व्यावहारिक सुझाव को अपना कर अपना आध्यात्मिक जीवनस्तर उच्च से उच्च उठायेंगे।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
१.	अपनी बात	सम्पादक	१
	बाल-प्रसून		
२.	मेरा विद्यालय (कविता)	अजय शुक्ल सप्तम क	२
३.	बात अपने मन की	अयूब अली षष्ठ ख	३
४.	मेरे जीवन का लक्ष्य	प्रवीण सास्वत अष्टम क	५
५.	भगवान परशुराम	नीरज जोशी अष्टम क	७
६.	आदर्श बालक अष्टावक्र	दीपक माहेश्वरी अष्टम क	११
७.	शिवाजी	अनिल मेहरोत्रा सप्तम क	१३
८.	माँ भवानी के चरणों में …………	मनोज निगम सप्तम क	१५
९.	वासुदेव बलवन्त फड़के	सुधीर कुमार अवस्थी अष्टम क	१७
१०.	करारा तमाचा	मलय चतुर्वेदी अष्टम क	१९
११.	तीन फूल और तीनों न्योछावर	विवेक भागवत अष्टम क	२०
१२.	दिमागी कसरत	प्रदीप सिन्धी अष्टम क	२२
१३.	कर्त्तव्य	रामनरेश सप्तम क	२३
१४.	मेरे जीवन का लक्ष्य	अनूप त्रिवेदी अष्टम क	२४
१५.	लौट के बुद्धू घर को आये	अलिन्द पितरिया षष्ठ ख	२६
१६.	जेट यान	अरविन्दमणि त्रिपाठी अष्टम क	२७
१७.	वे रोमांचकारी दिन	अनिल सिंह अष्टम ख	२८
१८.	बुद्धि परीक्षा	सजय भारद्वाज अष्टम क	३०
	किशोर-दीप		
१९.	सैनिक मेरा नाम	आलोक गुप्त नवम क	३१
२०.	जयद्रथ–बध	संजय श्रीवास्तव दशम क	३२
२१.	तुलसी और समन्वय–भावना	नवनीत कुमार दशम क	३७
२२.	आँसू	आदित्य नारायण अग्निहोत्री दशम क	४१
२३.	कामायनी-एक दृष्टि	संजय श्रीवास्तव दशम क	४५
२४.	पर्व और त्योहारों की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि	आशुतोष शर्मा दशम क	४८
२५.	चरित्र–बल	संजय चक्रवर्ती दशम क	५१
२६.	आदर्श कारागार	कपिल कपूर दशम ख	५३
२७.	आज का जुआँ लाटरी	धर्मवीर त्रेहन दशम क	५५
२८.	अद्भुत पेड़	अखिलेश शुक्ल नवम क	५७
२९.	तुलसी साहित्य में लोक मंगल की भावना	दीपक सक्सेना दशम ख	५८
३०.	चलते-फिरते अनोखे मकान	संजय सिंह सचान दशम क	६२

क्रमांक	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
३१.	मेरी सागर-यात्रा	सुधीर सिंह नवम ख	६४
३२.	भारतीय विज्ञान का विकास	अवधेश कुमार दशम क	६५
३३.	रघुवंश महाकाव्यस्य त्रयोदश सर्गस्य कथा-सारम्	अतुल रस्तोगी नवम क	६८
३४.	बाण-कृत कादम्बर्याः सारम्	आशुतोष शर्मा दशम क	६९
३५.	गुरू—दक्षिणा	राजीव बाजपेयी नवम क	७१
३६.	पूर्व प्रताप भानुः पश्चाद्रावणः	अनिरुद्ध सिंह नवम ख	७२
३७.	चन्द्र-यात्रा	संजय कुमार श्रीवास्तव दशम क	७३
३८.	Changing Ways of Democracy.	मुकेश निगम १० क	७५
३९.	Lal Bahadur Shastri	दयाशंकर ८ क	I
४०.	The Young Saint of India	अनुपम त्रिवेदी ८ क	III
४१.	Small India	राहुल वशिष्ठ १० क	७७
	तरुण-नैवेद्य		
४२.	तरुण-भारती एक विचार	ओम शंकर	७९
४३.	दुर्बलता एक अभिशाप	शशि शर्मा	८२
४४.	तरुण—भारती	प्राचार्य चन्द्रपाल सिंह	८४
४५.	धर्मो रक्षति रक्षितः	अनित कुमार	८६
४६.	चाणक्य एक आदर्श देश-भक्त	दुर्गेश कुमार	९१
४७.	एक समर्पित जीवन	यशवन्त सिंह	९५
४८.	न्यूट्रान बम की खोज	प्रकाश शर्मा	९७
	समवेत-नीराजना		
४९.	बिखराव	ज्ञानेन्द्र शर्मा	९९
५०.	बाँधो अवश्य सेतु	"विश्वबन्धु"	१००
५१.	तुम्हारे कार्यों ने दी है सतत् प्रेरणा	दीपक राजे	१०२
५२.	प्रसाद का प्रकृति-चित्रण	रामतीर्थ	१०३
५३.	राष्ट्र—यज्ञ	ओम शङ्कर	१०६
५४.	हिमालय का उद्भव और विकास	राम निवास	११३
५५.	वार्षिक आख्या	प्राचार्य	११५
५६.	१९७८ की हाई स्कूल परीक्षा में प्रविष्ट होने वाले छात्र		११८

यज्ञ के होता तुम्हीं थे,

स्वयं आहुति भी बने थे।

विद्यालय की आधारशिला रखने वाले, इस युग के दधीचि,

पूज्य माधवराव सदाशिव गोलवलकर उपाख्य "श्री गुरु जी",

जिन्होंने ऋषि-परम्परा को फिर से जीवमान बनाया।

बाधायें जिसे झुका न सकीं..................

विद्यालय की संस्थापिका

स्वर्गीया सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह

उपाख्या 'बूजी'

जिन्होंने अपने आदर्शों की झलक इस विद्या-मन्दिर में देखने की बड़ी उत्कट लालसा सँजोई थी ।

अपनी बात

नीराजन का पंचम पुष्प एक लम्बे संघर्ष के पश्चात् पुनः अपने पूर्व-रूप की ओर बढ़ते हुए साहस-सम्पन्न नीराजक और अभिनव ज्योतिष्मती दीपमाला—सभी कुछ परम्परा की नींव पर अभिनव निर्मिति के रूप में।

प्रथम प्रसून की प्रस्तुति पर हमने धौम्य, चाणक्य और समर्थ गुरु रामदास को झंकृत करने का प्रयास किया था। शनैः शनैः हमने आरुणि, चन्द्रगुप्त और शिवा का भी दिशा-बोध कराने का सर्वथा सफल प्रयास प्रस्तुत किया। काल के क्रूर झंझावातों से झुलसे प्रसूनों को भी वज्रचरणी नीराजकों से अर्पित करवाया और अब आज फिर से परिस्थितियों का रोना न रोकर यथा-प्राप्य सामग्री समेत अपने लक्ष्य-देवता के श्री चरणों की ओर बढ़ते हुए अपने को सचमुच में गौरवान्वित अनुभव कर रहा हूँ।

११ अप्रैल १९७७ के पश्चात् से, तूफान के बाद के ध्वंसावशेषों में रंग भरते हुये आज हमको लगभग एक वर्ष हो रहा है। कितनी चमक आ पाई है यह तो समय ही बतायेगा; किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, साधना-पथ की कठोरता को हम सब सही रुप में आँक सकने में सर्वथा समर्थ रहे, जिसके परिणाम स्वरुप आज भी हमारी आस्थायें, मान्यतायें एवं कल्पनायें अक्षुण्ण हैं, अडिग हैं।

परिस्थितियों के प्रभाव से अगली कक्षायें न खोल पाने के बाद भी हमने अपने ध्येय-पथ के सहयात्रियों को, जिन्हें पूर्व अंकों में आरुणि और चन्द्रगुप्त कहा जा चुका है, एक नये सूत्र में पिरोने का सद्प्रयास किया है। **'तरुण-भारती'** नामक यह संस्था अपनी बाल तथा किशोर-भारती संस्थाओं की ही अगली कड़ी है।

नीराजन के तीन अंगों को हमारी एक-एक छात्र संस्था तथा चौथे समवेत् नीराजना को सुधी आचार्यो ने सजाया है। प्रसून, दीप, नैवेद्य एवं नीराजना नाम के इन चार खण्डों में क्रमशः अष्टम कक्षा पर्यन्त, दशम कक्षा तक, दशम से आगे तथा आचार्य वृन्द की रचनायें समाहित हैं।

अन्त में अपने सुविज्ञ पाठकों से एक ही निवेदन है कि नीराजकों के इन बाल-प्रयासों में विद्वत्ता की गहराई न ढूँढ़कर उत्साह की उर्मियाँ देखने का प्रयास करें। मौलिकता के दम्भ को सर्वथा त्याग कर मधु-मक्षिकावृत्ति का जो श्रम-पूर्ण परिचय प्रस्तुत अंक में है, उसका मधु आपको रुचेगा इसी विश्वास के साथ आपका—

सम्पादक

मेरा विद्यालय

—अजय शुक्ल (सप्तम क)

[अपने विद्यालय के प्रति अपने मनोविचारों का प्रकटीकरण किया है प्रस्तुत कविता द्वारा बाल कवि ने]

आओ आज तुम्हें बतलायें,
अपने विद्यालय की बात।
दीनदयाल विद्यालय बढ़िया,
इससे खाते हैं सब मात।
छात्र यहाँ अनेक हैं पढ़ते,
अनुशासन की श्रेष्ठ व्यवस्था।
राष्ट्रीय पर्व, पिकनिक, पी.टी. की,
भी है भाई उचित व्यवस्था।।१।।
अरे ! यहाँ हैं कौन प्राचार्य ?
क्या यह भी बतलाना है ?
श्री शन्तनु रघुनाथ शेण्डे,
यह जन-जन ने जाना है।
आप सदृश विद्वान प्राचार्य,
और कहाँ मिल सकते हैं।
प्रातः से लेकर सायं तक,
मेहनत नित्य किया करते हैं।।२।।
और गुणी हैं सभी आचार्य,
मन से खूब पढ़ाते हैं।
निज विषयों के वे पण्डित हैं,
भली-भाँति समझाते हैं।
है यहाँ व्यवस्था छात्रवास की,
रहते हैं जिसमें छात्र साठ।
रहकर नित आचार्यों के सँग,
पढ़ते सभी एकता का पाठ।।३।।

बाल-प्रसून

बात अपने मन की

—अयूब अली (षष्ठ 'ख')

[आपातकाल की कलुषित कालिमा से वीणा-पाणिनी माँ शारदा का यह पावन मन्दिर भी अछूता न रह सका। साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने का मनगढन्त आरोप लगाकर विद्यालय सरकारी तन्त्र के हाथ पहुँचा। पर आपातकालीन स्थिति की समाप्ति के उपरान्त साम्प्रदायिकता का विष–वमन करने वालों के मुख पर एक करारा तमाचा है, प्रस्तुत 'बात अपने मन की' बाल लेखक की कलम से…………]

कानपुर विद्या मन्दिर स्वरुप नगर से पंचम कक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त खड़ी थी समस्या एक अच्छे विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने की। जुलाई ३, १९७७ को थी प्रवेश परीक्षा मेरे घर के निकटवर्ती विद्यालय अर्थात् पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय में। अच्छे विद्यालय की उमंग मुझे यहाँ खींच लायी। मैं सम्मिलित हुआ प्रवेश परीक्षा में। अनेक ने मेरे पिताजी से कहा— "व्यर्थ आप परेशान हैं प्रवेश के लिये। आपके बालक को तो किसी भी दशा में इस विद्यालय मे प्रवेश न मिलेगा।" हृदय की पूरी उमंग को दबा दिया था लोगों के इस कथन ने। पर खुदा पर विश्वास रखते हुये मैं अगले ही दिन आया देखने अपना परीक्षाफल। प्रवेशार्थियों की सूची में अपना नाम देखकर उनलोगों के कथन के अनुसार तो आँखों को विश्वास नहीं हो रहा था। आखिर लोगों से पूछ ही लिया कि इस सूची में लिखा नाम मेरा ही है? जब विश्वास जम गया तो दौड़ कर घर आया। बड़े ही आनन्द के साथ मैं अपने पिताजी को लेकर विद्यालय आया। शुल्क जमा करवाया। इस प्रकार मैं प्रविष्ट हुआ इस विद्यालय में।

संभवतः ८ जुलाई को प्रथम बार मैं विद्यालय में पढ़ने के लिये आया। घण्टी बजने के पश्चात् 'आचार्य जी' कक्षा में आये। उन्होंने हमारी उपस्थिति ली और हमें जूता मोजा उतार कर विशाल कक्ष की ओर चलने को कहा। मैं तो एक अजीबोगरीब स्थिति में अन्य साथियों की नकल कर रहाथा। विशाल कक्ष में हनुमान जी की विशाल मूर्ति एवं सरस्वती जी का चित्र रखा था। दक्ष की आज्ञा अनुशासक द्वारा मिली। पुन: मातृ-प्रणाम १, २, ३ व प्रार्थना आज्ञा भी कानों में पड़ी। हारमोनियम के स्वरों से मिलते स्वर 'ॐ विश्वानि देव …………" आदि को सुनते मुझे लगा कहीं मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। कक्षा में आने पर मुझे मिला आचार्यों द्वारा अपनत्व का व्यवहार। मेरे मस्तिष्क में बार-बार उन लोगों के वे शब्द गूंज उठते थे जो मेरे पिताजी से कहते थे कि "इस विद्यालय मे आपके लड़के को प्रवेश न मिलेगा।" पर मैं तो देख रहा था सब

उल्टा ही। मेरे प्रति आचार्यों का स्नेह एवं अपनत्व पूर्ण व्यवहार। इसी सबने मुझे इस विद्यालय के अत्यधिक निकट लाकर खड़ा कर दिया।

विद्यालय में चलनेवाली सदाचार बेला में आचार्यों द्वारा सदाचार-सम्बन्धी दिये गये ज्ञान को मैंने अपने जीवन में उतारने का यत्न करना प्रारम्भ किया, तो मुझे अपने आचार-व्यवहार में एक स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा। मन में एक ही विचार बार-बार आता है, काश मेरा बचपन से इसी प्रकार के विद्यालय से सम्बन्ध होता तो शायद आज मैं अपने जीवन को और अधिक व्यवस्थित बना लेता। कवि इकबाल की निम्न पंक्तियों की ओर ध्यान देता हूँ, तो मुझे लगता है कि इस विद्यालय ने ये भाव साकार करके ही दिखा दिये है।

'मजहब नहीं सिखाता, आपस में वैर करना'

इस भारत-माता की गोद में हमने जन्म लिया है इसका अन्न-जल ग्रहण कर हम बड़े हो रहे है इस लिये इस पर हम अपना सर्वस्व अर्पण करें, यही भाव प्रत्येक के मन में यह विद्यालय जगाता है। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझ पर जो इस विद्यालय की छाप पड़ रही है वह आजीवन मुझ पर बनी रहे। मैं भी अपने जीवन को शहीदे आज़म अशफाक़ के समान मादरेवतन की खिदमत में पेश कर सकूँ।

फुलझड़ियाँ

(१) रामू (रोते हुये)—'पिता जी! मुझे श्यामू ने मारा है।'

पिता जी—'क्यों रे श्यामू? रुक मैं मार मार कर तेरी चटनी बना दूँगा।'

श्यामू— 'ठहरिये पिता जी! पहले मैं समोसे तो ले आऊँ।'

(२) अध्यापक (मोहन से)—मोहन! तुमने इतिहास का प्रश्न-पत्र हल क्यों नहीं किया?

मोहन—मास्टर जी! दरअसल प्रश्न उस समय के पूँछे गये थे, जब मैं पैदा भी नहीं हुआ था।

(३) अध्यापक—क्यों राजेश? तुम कितना बोझ उठा सकते हो?

राजेश —सर! लगभग १०० पौंड।

अध्यापक—अगर तुम्हें किसी २०० पौंड वाले व्यक्ति को उठाना पड़े तो क्या करोगे?

राजेश —दो चक्कर में उठाऊँगा, सर।

-राजीव गुप्त (सप्तम 'क')

मेरे जीवन का लक्ष्य

—प्रवीण सारस्वत (अष्टम 'क')

[भारतीय शिक्षा-समिति उ० प्र० द्वारा आयोजित प्रान्तीय स्काउट शिविर, लखनऊ की भाषण-प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त]

प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि एक दूसरे से भिन्न होती है। एक ही घटना को देखकर अलग-अलग व्यक्ति में अलग-अलग विचार आते हैं। वृद्ध और मृत व्यक्ति को देखकर गौतम बुद्ध के मन में जीवन के प्रति विरक्ति हो गई थी। परन्तु मैंने एक अचेतन कृषकाय रोगी को मार्ग पर जीवन-मरण के मध्य झूलते हुए देखा तो मुझे इस संसार से विरक्ति नहीं मोह हो गया। और मैंने विचार किया कि यदि मैंने चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा होता तो इस व्यक्ति को कदाचित् मरण के क्षेत्र से खींचकर जीवन के क्षेत्र में ले आता। तभी मैंने जीवन का लक्ष्य क्या है, यह निश्चित कर लिया, कि मैं चिकित्सा शास्त्र पढ़ूँगा और उस लक्ष्य को पाने के लिये अथक प्रयत्न कर रहा हूँ।

अपने जीवन का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं अपितु उससे समाज का, देश का, कल्याण हो ऐसी भावना होनी चाहिये। "वसुधैव कुटुम्बकम्" संपूर्ण पृथ्वी ही एक कुटुम्ब है और मैं उसका कल्याण करने का प्रयत्न करूँगा। महाराष्ट्र के सुविख्यात लेखक साने गुरूजी ने कहा है— "ध्येय जितना महान् होता है, उसका मार्ग उतना ही बीहड़ और लम्बा होता है।"

चिकित्सा-शास्त्र पढ़ना ही मेरा ध्येय नहीं; अपितु चिकित्सा शास्त्र पढ़कर ऐसी जगह जाना है जहाँ पर कोई डाक्टर न हो। ग्रामीण जनता हम शहरियों से कष्ट तो अधिक सहन करती है परन्तु उस अनुपात में उन्हें विश्राम नहीं मिल पाता है। अशक्त माता-पिता की संतान का रोगों को जन्म से ही ले आना स्वाभाविक बात है। अतः मैं पढ़कर गाँवों में जाकर इस बात का बोध कराऊँगा कि— "Health is Wealth" तथा मैं इस उक्ति का महत्व समझाऊँगा। अधिकाँशत: यह देखा गया है कि ग्रामीण जीवन में स्वच्छता का कोई महत्व नहीं होता, जिसके कारण वहाँ पर मलेरिया, प्लेग, डायरिया आदि रोग हो जाते हैं। इनके साथ एक और समस्या है कि रोग का निदान तो हो गया; परन्तु औषध के लिये धन नहीं है। इसीलिये मैं उनको निःशुल्क या अल्प धनराशि में औषध उपलब्ध कराने का प्रयत्न करूँगा; क्योंकि सरदार पटेल ने कहा है कि "गरीबों की सेवा ईश्वर की सेवा है।"

मैंने अपने जीवन का लक्ष्य जब अपनी मित्र-मंडली में बताया तो एक बड़ी विचित्र प्रतिक्रिया हुई। कहने लगे—इतना परिश्रम करने के बाद यदि गाँवों का वही गंदा जीवन जीना पड़े तो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ है। हम तो परिश्रम करने के बाद ऐश्वर्यमय जीवन जीना चाहेंगे। परन्तु जैसा कि प्रेमचन्द्र ने कहा है—"सच्ची लगन को

काँटों की परवाह नहीं होती।" मैं अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए सारी शारीरिक और मानसिक शक्ति लगा दूँगा। गाँधी जी ने एक बार हरिजनों की बस्ती में कहा था—"यदि समाज में एक व्यक्ति आरोग्य के प्रति सजग है तो सारा समाज निरोग हो जायेगा; परन्तु इसके लिए उस व्यक्ति को प्रयत्न करना पड़ेगा।

मुझको यह पूर्ण विश्वास है कि अन्त में सफलता मुझको प्राप्त होगी, क्योंकि एमर्सन ने कहा है "आत्म विश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है।"

क्या आप जानते हैं कि..........?

१—हाथी के पेट में भी ऊँट की भाँति पानी की थैली होती है।

२—अभी तक किसी मनुष्य को सबसे लम्बी कैद ३४००० वर्ष की हुई है।

३—संसार की सबसे पतली घड़ी की मोटाई २ मिमी० है।

४—यदि कोई उपग्रह पृथ्वी से १८००० मील दूर हो तथा २२३०० मील प्रति घन्टे की गति से पृथ्वी की परिक्रमा करे, तो पृथ्वी से वह गतिविहीन दिखेगा।

५—अहमदाबाद में स्थित अन्तरिक्ष के भू केन्द्र का एंटिना इतना बड़ा है कि उस पर फुटबाल व क्रिकेट के मैच खेले जा सकते हैं।

६—टमाटर एक जहरील पौधा है।

७—सबसे छोटा देश व सबसे बड़ा महल बेटिकन है। इटली की राजधानी रोम की एक झील में स्थित १०८ एकड़ क्षेत्रफल वाले इस देश का प्रधान पोप है। इसकी अपनी स्वतन्त्र डाक, पुलिस व वायुयान सेवा है।

८—विश्व की सबसे बड़ी घड़ी ब्रिटिश संसद में लगी है, जिसकी सफाई उसके अन्दर जाकर मनुष्य करते हैं।

संकलनकर्ता—
दीपक महेश्वरी (अष्टम 'क')

भगवान परशुराम

—नीरज जोशी, (अष्टम 'क')

[भगवान विष्णु के दशावतारों में एक, भगवान परशुराम के, जीवन पर प्रकाश डालने का बाल लेखक द्वारा बाल प्रयास]

सहस्त्रार्जुन राजा सुदास की बहन का हरण करना चाहता था। गुरुपुत्र राम को लाने की उसकी इच्छा नही थी। पर उसके सेनापति ने राम को लाने की इच्छा भी प्रकट की। तो सहस्त्रार्जुन उनको साथ लाने क तैयार हो गया। पर यह मूर्खता सहस्त्रर्जुन के हृदय में खटक रही थी। राम लोमहर्षिणी का रक्षक हो गया। राम जब भड़श्रेण्य व उसके सैनिकों के सम्पर्क में आया तो वे उसके शिष्य बन गये। इसलिये उसे भड़श्रण्य को छोड़ने में कुशल न जान पड़ी।

जैसे-जैसे लोगों को पता चला कि जमदग्नि के पुत्र आये हैं, तो उनका सत्कार होने लगा। तभी महिष्मती से एक सैनिक गुरु भृकुण्ड व उनकी रानी मृगा का संदेश लाया कि लंका का राजा रावण एक विशाल सेना लेकर नर्मदा के दक्षिणी तट पर चढ़ा आ रहा है। उसका सामना करना अति आवश्यक था। उसके बाद उसने सेना एकत्र की तथा भड़श्रेण्य से बोला– "मामा मैं युद्ध करने जा रहा हूं।" भड़श्रेण्य बोला–'मैं भी तैयार हूं।" सहस्त्रार्जुन बोला–नहीं तुम्हारा काम दूसरा है।

"क्या ?" भड़श्रेण्य चकित हो उठा। आज तक उसके बिना कोई युद्ध नहीं लड़ा गया था।

तुम्हारा काम अपने गुरुदेव व लोमा को साथ रखने का है, ऐसा कहकर सहस्त्रार्जुन चल पड़ा।

यादव गोत्र के गुरु कुक्षिवन्त के घर मुखिया पहुँचे तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

मुखिया–रयशी यदि वर्षा न हुई तो साबरमती के तीर पर जाना होगा। मेरी आज्ञा के बिना कहीं नहीं जाया जा सकता है। उस धूर्त पाखण्डी गुरू ने कहा। फिर साँस लेकर बोला–"मैं बैठा हूँ तब तक क्या होने को है, ऐसा कह वह चल पड़ा।

उसी चन्द्रिकामय मध्य रात्रि में एक शंखनाद हुआ। लोग जाग गये तथा चिल्लाने लगे "राजा आ गये।" तभी दूसरा शंखनाद हुआ। उसके प्रत्युतर में मुखिया ने भी शंखनाद किया। उधर से भड़श्रेण्य ने पहला शंखनाद व दूसरा शंखनाद राम ने किया। लोग चिल्ला पड़े "राम आ गये।"

कुछ समय पश्चात् राम व लोमा नहाने चल पड़े। सारा गोत्र सो रहा था। एक स्थान पर एक औरत बैठी थी। राम–माँ जी यहाँ कोई नदी है। उत्तर नकारात्मक रूप में ही मिला। अगले दिन पानी से परेशान होकर लोग साबरमती चलने की जिद करने लगे। राम की आँखें बिकराल हो उठीं। आखिरकार उन्होंने वरुण का आवाहन किया। जिससे वर्षा हुई तथा गोमती बह निकली।

सध्या होने को थी। पांच लोगों का एक भाग घुड़सवारी कर रहा था। जिसमें राम, लोमा, प्रतीप, उज्ज्वल व कूर्मा थे। थोड़ी दूर पर रक्षपाल नागों से लकड़ियाँ फड़वा रहे थे। राम की आंखें इस कृत्य को

देख विकराल हो उठीं। इसे देख रक्षपाल भागने लगे। उनको मारकर वे गाँव लौटे तथा उसका शवदाह किया। इसके पश्चात् राम ने अपना आश्रम नागों के खेत के पास ही स्थापित कर लिया। इस आश्रम में १०० युवक थे, जिन्होंने भाला, तीर चलाने आदि का अभ्यास कर लिया था। यादवों के गोत्र के आगे शार्यातों का गोत्रथा। राम ने सोचा कि यदि गोत्रों का एकीकरण कर दिया जाय तो आर्यत्व पैदा हो सकता है।

गोकर्ण तीर्थ का दिन था। पहाड़ी के पास शतक का एक शिष्य राम के कान में आकर कुछ कह गया। राम हाथ में परशु लेकर दक्षिण की ओर मुड़ा—"प्रतीप, हिम्मत है ?" हां गुरुदेव कह कर प्रतीप चला। एक झाड़ के पीछे मधु व अन्य तीन बरछियाँ घिस रहे थे। राम आगे बढ़ा—"मधु !" मधु खड़ा हो गया। उसने बरछी पर हाथ रखा। अपनी बरछी को न छेड़ना "मधु, यह बरछी तेरे अपने बाप व भाई के लिए तैयार की जा रही है।" मधु कुछ कहे इससे पहले राम ने उसे मार दिया। फिर कुछ देर बाद शार्यातों पर आक्रमण करके वहां के घोड़े व घर लूट लिये गये।

इसके बाद यज्ञ हुआ। विमद व कुक्षि आचार्य के स्थान पर थे। यज्ञ के उपरान्त राम व लोमा का विवाह हुआ। इसके पश्चात् यादव व शार्यातों के लग्न हुये। इसके बाद उन कैदियों को लाया गया, जिन्होंने यादव गोत्र स्वीकार नहीं किया था। उनमें शार्यातराज का पुत्र प्रमुख था।

राम शार्यातराज के पुत्र से बोला

"तू वीर है। मैं जानता हूँ मेरे स्वजनों की स्मृति तुझे दग्ध कर रही है। तेरी वीरता मेरे मन में बसी है। यादव गोत्र में शामिल हो जाओ।" ज्यामघ आगे बढ़ा

"राम ! जमदग्नि पुत्र हमारे स्वजनों को तूने मारा हमारे गोत्र को प्रपीड़ित किया। हमारी मां-बहन को पराये घर बैठा दिया। मुझे भी मार ले। आखिर शर्यात् ज्यामघ शर्यात ही रहेगा।

तू आखिर क्या चाहता है ? राम का कहना था।

मैं क्या चाहता हूँ ? क्या चाहता हूँ ? ले............। पास खड़े एक यादव से कटार लेकर राम पर झपटा। तभी कोलाहल हो गया।

(३)

जब लोमा भगवती लोमहर्षिणी हो गई। भगवती लोगों को अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखाती थी।

भार्गव ने २१ दिन का यज्ञ प्रारम्भ किया। लोग बड़ी दूर से आते श्रद्धासुमन अर्पित करते। यज्ञ के बारहवें दिन भार्गव यज्ञ कुण्ड के पास बैठे थे। अघोरी के वेश में ज्यामघ आ रहा था, यकायक ही भयानक नेत्र खुल पड़े।

"कौन ज्यामघ" धीरे से भार्गव का स्वर सुनाई पड़ा।

ज्यामघ अपने गोत्र व पिता का प्रतिशोध करना चाहता है मुझे मार कर क्या हाथ लगेगा ? इससे अच्छा यही है कि तू मेरे साथ चला आ। आखिर ज्यामघ के हाथ से छुरी गिर पड़ी। वह किसी तरह प्राण लेकर भाग निकला।

सहस्रार्जुन अपने राज्य पहुँच गया था। उसने सेनापति तालबाहु द्वारा भार्गव को बुलाया। वहाँ पहुँचने पर

"लड़के !" अब तेरी घड़ी आ पहुँची है, मैं तुझको चार बार छोड़ चुका हूं। पर जब मौत आती है तो सिंहनी स्वयं बाड़ पर जाती है। अब नहीं छोड़ूँगा।

"कृतवीर्य के पुत्र"। बाँधने छोड़ने वाला तू कौन है। तू पागल हो गया है। गुरु को बाँधने वाले।

"तू मेरा विनाश करेगा" ?

"तू अपने ही हाथों पर अपना विनाश कर रहा है। अर्जुन मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू व तेरे हैह्यगण जंगल में कुत्तों की मौत मरेंगे।" तालबाहु ने उनका बन्धन ढीला कर दिया व उन्हें चन्द्रतीर्थ जाने की सलाह दी। हैहयनायक खड़े थे। सहस्राबाहु को भार्गव कंगूरे पर दिखाई दिये। तभी भार्गव कंगूरे से कूद पड़े व अदृश्य हो गये।

इधर कुछ दिनों बाद भगवती मृगा के घर पहुंची व उनसे भार्गव का पता बताने को कहा। मल्लाहों ने बताया था कि चन्द्रतीर्थ पहुँचने से पहले एक मल्लाह ने

नाव में छेद कर उन्हें डुबो दिया। लेकिन गुरुदेव तैरते हुए अघोरी वन आ गये तथा कुछ देर बाद मल्लाहों की भयंकर किलकारियाँ सुनाई दीं उन्हें लगा कि गुरुदेव अघोरियों के हाथ पड़ गये।

"फिर!" लोमा ने पूछा

"यह तो डड्डुनाथ अघोरी ही जाने"। मृगा बोली

"वे कहाँ मिलते हैं?"

"महिष्मती के श्मशान में वह प्रति अमावस्या को आता है।"

इसके बाद भगवती चली गई। अब हर अमावस्या को श्ममशान जाकर वे अघोर चक्र बनाती व उसकी पूजा करती। गुरु डड्डुनाथ से पूछने पर उन्हें राम का पता चला। यह भी बात प्रचलित है कि भार्गव को डुबाने वाला ज्यामघ था।

इसके बाद वे आर्यावर्त की ओर लौटने लगे। उनके साथ चालीस अन्य लोग थे। रास्ते में उन्होंने कापालिक देवी महादन्ती को स्वीकार किया व उनका उद्धार किया।

वे अपना घोड़ा दौड़ाये आगे बढ़ रहे थे तो उन्हें एक वृद्ध दिखाई दिया। उसके शरीर की हड्डी गिनी जा सकती थी। राम ने परशु फेंका व पिता को प्रणाम किया तथा बोले—"पिता जी! भृगुश्रेष्ठ।"

"जा, भाई चला जा, मैं भृगुश्रेष्ठ नहीं हूँ। मैंने उनको कलंकित किया है।

"क्या कह रहे हैं आप? पिता जी! पिता जी।"
हाँ तेरी माँ आर्यों का मुँह काला कर गन्धर्वों के साथ चली गई। तू चला जा। यदि मेरा पुत्र है तो अम्बा का शिरच्छेद कर।

इसके बाद वे गन्धर्व पर्वत में अपनी अम्बा रेणुका से मिले व उनसे पूरी स्थिति पूछी। इसके कुछ देर बाद वे पिता के आश्रम में थे।

"राम! राम तू मेरा पुत्र है—वेदना से जमदग्नि ने कहा।

हाँ पिता जी! राम बोले।

मेरी आज्ञा का पालन करेगा न—

"तो इस अनार्या का सिरच्छेद कर"

हाँ पिता जी—राम ने कहा—अम्बा! सिर प्रस्तुत कर।

"बेटा! तेरे हाथों मेरी मृत्यु ही मेरी याचना है।"

"राम!" जमदग्नि ने कहा—सृष्टि में ऐसा कभी न हुआ। मैंने ऐसी अनेक कुलटाओं का वध करवाया है। फिर यही चाहता हूँ।

"पिता जी, मैं अम्बा को अवश्य मारूँगा। फिर कभी भृगुवंश में जन्म न लूँगा।"

"तू मरना चाहता है" जमदग्नि बोले।

"भृगुश्रेष्ठ जिस अम्बा ने जगत में उजाला किया है उसको आपने कुलटा कहा है।

"राम, चुप रह! रेणुका ने कहा।

"मैं चुप नहीं रहूँगा। आप अंधे हैं, नहीं तो सती अम्बा को पापचारिणी न मान बैठते।"

राम परशु ले रेणुका की ओर बढ़े।

"पुत्र, यह तू क्या कर रहा है?"

"आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। अम्बा का वध कर रहा हूँ।"

"राम परशु फेंक दे, मैं अपनी प्रतिज्ञा लौटाता हूँ।" उस समय जन-जन की आँखों में आँसू टपक रहे थे।

सहस्त्रार्जुन आर्यावर्त की ओर बढ़ा जा रहा था। यादवों की तैयारियाँ चल रही थीं। उसने पराशर मुनि

को मार दिया । वशिष्ठ के आश्रम में उसने देखा वहाँ पाँच मुनि यज्ञ में आहुति दे रहे थे । थोड़ी देर बाद वशिष्ठ मुनि ने कहा–ऐ···बहुत हुआ अब । मुझे पहचान लिया न

"मैं तुझे बचपन से ही जानता हूँ ।"

"तुम्हें मेरी रीति के अनुसार रहना है ।"

"वशिष्ठ आर्य रीति से ही रहता है ।"

ऐसा कहने पर उसने वशिष्ठ को मार दिया ।

इसके बाद जमदग्नि के आश्रम में उसने उनको पुरोहित बनने पर जोर दिया ! परन्तु उनके मना करने पर उन्हें बन्दी बनाया । तब तो परशुराम ने सहस्त्रार्जुन को मार दिया व पिता को मुक्त किया ।

सावधान ! हँसना सख्त मना है ।

१. एक बार तीन गप्पी अपने पर दादाओं के मकानों के विषय में चर्चा कर रहे थे । एक ने कहा—"मेरे पर दादा ने इतना ऊँचा मकान बनवाया था कि यदि कोई छोटा बच्चा ऊपर से नीचे गिर जाय तो उसे नीचे पहुँचने में दो वर्ष का समय लगता था"

दूसरा बोला—"बस । मेरे परदादा के मकान से गिरने वाला युवक नीचे आने तक बूढ़ा हो जाता था ।"

तीसरे ने कहा—"अरे यह भी कोई खास बात है । मेरे परदादा के मकान से यदि कोई आदि मानव गिर जाय तो नीचे आने तक वह वर्तमान मानव बन जाता था ।"

२. एक व्यक्ति नौसेना में कैप्टन के लिए साक्षात्कार देने गया । साक्षात्कार में बैठे एक अधिकारी ने पूछा—"यदि किसी जहाज के तुम कप्तान हो ; जहाज बीच समुद्र में जा रहा हो, तभी तूफान आ जाए तुम क्या करोगे ?"

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "मैं लंगर डाल दूँगा ।"

पुनः अफसर ने पूँछा—"यदि एक और तूफान आ जाय तो"

उत्तर मिला—"मैं दूसरा लंगर डाल दूँगा ।"

बार बार यही प्रश्न करने और यही उत्तर पाने पर अधिकारी ने झुँझला कर पूँछा—"आखिर तुम इतने सारे लंगर कहाँ से लाओगे ?"

व्यक्ति ने उत्तर दिया—"जहाँ से आप इतने सारे तूफान लायेंगे ।

—प्रवीण अग्रवाल सप्तम 'क'

आदर्श बालक अष्टावक्र

—दीपक माहेश्वरी, अष्टम 'क'

("लवकुश ध्रुव प्रह्लाद बनें हम............" की पंक्तियों को सार्थक करने हेतु आवश्यक हैं इस प्रकार के)
(बाल महा-पुरुषों के प्रेरणामय जीवन। उसी श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में लेखक द्वारा अतीत के एक)
(प्रेरक जीवन का परिचय।
)

वीरों की जननी व क्रीड़ा-भूमि भारत में जहाँ बड़े-बड़े विद्वानों व शहीदों ने आदर्श प्रस्तुत किए, वहीं छोटे छोटे बालकों ने भी शिशु से वृद्ध तक के सामने अतुलनीय आदर्श प्रस्तुत किये हैं। ध्रुव ने पाँच वर्ष की आयु में ही कठोर व निःश्वास तप द्वारा भगवान को प्रसन्न कर लिया था। प्रहलाद ने सात वर्ष में ही अनेक कष्ट सहन करके अपने दुराचारी व अधर्मी पिता हिरण्यकश्यप का घोर विरोध किया। अभिमन्यु ने सोलह वर्ष की आयु में ही अधर्मी व पराक्रमी सात महारथियों के छक्के छुड़ा दिये। ऐसा ही एक बालक अष्टावक्र भी था।

X X X

भारत के अतीत में राजा जनक के राज्य-काल में उनके राज्य के समीप ही महान् राजर्षि व वेदज्ञाता मुनि उद्दालक का आश्रम था। उनके सुजाता नामक एक सुन्दर व गुणवती पुत्री थी। उद्दालक के कहोड नामक एक लगनशील व मेधावी शिष्य थे। एक दिन उद्दालक ने कहोड से कहा कि यदि तुम शीघ्र ही सभी पवित्र ग्रन्थों का गहन अध्ययन करके उनका ज्ञान प्राप्त कर लो, तो मैं तुम्हारा विवाह सुजाता से कर दूँगा। मेधावी व परिश्रमी कहोड ने शीघ्र ही वह कार्य पूर्ण कर लिया। उद्दालक ने वचनानुसार सुजाता का वैदिक रीति से पाणिग्रहण संस्कार उनसे कर दिया गया।

X X X

विवाहोपरान्त कहोड वहीं रह कर अध्यापन कार्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् सुजाता गर्भवती हुई। उसके मस्तिष्क में विचार आया कि मेरी संतान अभी से ज्ञानार्जन प्रारम्भ कर दे। अतएव उसने कहोड के शिष्यों को पढ़ाते समय समीप ही बैठ जाना प्रारम्भ कर दिया।

X X X

एक दिन कहोड शिष्यों को प्रवचन दे रहे थे, तभी सुजाता के गर्भ से आवाज़ आई कि पिता जी! आप इस मन्त्र का उच्चारण गलत कर रहे हैं। उनके पूछने पर सुजाता ने उन्हें बताया कि यह आवाज उनकी भावी संतान की है। शिष्यों के मध्य अपनी भावी संतान द्वारा अपमानित होने से क्रोधित कहोड ने कहा—"मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ कि जन्मते समय तेरा शरीर आठ स्थानों से वक्राकार होगा।" कुछ समय बाद सुजाता ने कहोड से सविनय निवेदन करते हुये कहा कि आप कहीं जाकर अपनी संतान के सुखी जीवन के निर्माण हेतु पर्याप्त धन कमा लाइये।

X X X

सुजाता की बात मानकर कहोड मिथिला नरेश

जनक के पास गये। जनक ने एक महायज्ञ कराया। उसमें अनेक स्थानों से विद्वान मुनि व महर्षि पधारे। कहोड ने भी सबकी भाँति आदर-सत्कार ग्रहण किया। इसमें बन्दी नाम के एक विद्वान मुनि ने चुनौती दी थी–"जो मुझसे शास्त्रार्थ करके हार जायेगा, उसे नदी में डुबो दिया जाएगा। अनेक विद्वानों, पंडितों व ऋषियों को नदी में डुबो दिया गया। कहोड की भी यही दुर्गति हुई।

X X X

सुजाता को जब अपने विधवा होने का ज्ञान हुआ, तो उसे असीम दुःख की अनुभूति हुई। उसका धैर्य टूट गया, क्योंकि धन के मद में उसने अपनी भावी संतान को पितृविहीन कर दिया था। उद्दालक ने समझाया कि मैं तुम्हारी भावी संतान को पितृ-प्रेमहीनता का अहसास न होने दूँगा। कुछ समय बाद उद्दालक की पत्नी व सुजाता ने एक साथ एक-एक पुत्र को जन्म दिया। कहोड के शाप के कारण सुजाता के पुत्र के शरीर पर आठ वक्र होने से उद्दालक ने उसका नाम अष्टावक्र व अपने पुत्र का नाम श्वेतकेतु रखा।

X X X

उद्दालक के संरक्षण में दोनों का भरण - पोषण, लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा होने लगी। एक दिन श्वेतकेतु ने अष्टावक्र को उद्दालक की गोद से ढकेल कर कहा, "ये तेरे पिता जी नहीं हैं।" मर्माहत अष्टावक्र ने अपने पिता के विषय में माँ से जानकारी प्राप्त कर तत्क्षण प्रण किया, "मैं बन्दी को नदी में डुबो कर रहूँगा।" रात्रि के द्वितीय प्रहर में वह श्वेतकेतु के साथ मिथिला नगरी में जनक के महल के द्वार पर पहुँचा। वहाँ बड़ी मुश्किल से द्वारपालों की मदद से द्वार के अन्दर राजा के पास पहुँचा।

X X X

पहले तो राजा उसकी बात को ठुकराने का प्रयास करने लगा, किन्तु बाद में वह बात मान गया। कुछ ही समय में बन्दी को शास्त्रार्थ में अष्टावक्र ने पराजित कर दिया। उसी समय सारे दरबार से एक साथ आवाज आई कि अन्यायी बन्दी को भी नदी में डुबोया जाय।

X X X

तब बन्दी ने आगे आकर कहा, "राजन्! मैं जल देवता वरुण का पुत्र हूँ। मेरे पिता एक महायज्ञ कर रहे थे। उसके लिए उन्हें पृथ्वी से विद्वान बुलाने थे। उनको मेरी चुनौती देकर शास्त्रार्थ में पराजित करके नदी में डुबवाना तो केवल समुद्र-तल पर भेजने के लिये उपाय मात्र था। अब वह यज्ञ समाप्त होने ही वाला है। वे सब आते ही होंगे। अष्टावक्र की कृपा से मैं भी अब अपने घर जा सकूँगा। अब सभी नदी तट पर चलें।"

X X X

नदी तट पर बन्दी ने अष्टावक्र से कहा, "अब तुम अपने बिछुड़े पिता से मिल सकते हो।" तभी सब ऋषि, मुनि व विद्वान एक-एक करके नदी से बाहर आये। कहोड के आते ही अष्टावक्र ने अपने पिता का चरण स्पर्श किया। कहोड ने उसे आशीर्वाद देकर कहा, "जो कार्य पिता न कर सका, वह पुत्र ने कर दिखाया। मैं धन्य हुआ।" सब ने एक स्वर में कहा, "अष्टावक्र ही हमारे मध्य सर्वश्रेष्ठ शास्त्रज्ञ है।"

X X X

राज से आज्ञा लेकर बन्दी जल में समाधिस्थ हो गये। फिर पिता के कहने पर अष्टावक्र नदी में एक गोता लगा कर आया। अब उसका शरीर सुगठित हो गया था। आश्रम में आने पर सभी उसका सुगठित स्वास्थ्य देख कर अतीव प्रसन्न हुये। आश्रम के सभी कार्य पुनः सुख व शान्ति से होने लगे।

X X X

इस प्रकार अष्टावक्र ने भी प्रह्लाद, अभिमन्यु व ध्रुव की भाँति शिशु से वृद्ध तक सभी के लिये एक अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया है।

शि वा जी

—अनिल मेहरोत्रा (सप्तम क)

[छत्रपति शिवाजी महाराज के राज्यारोहण के उपरान्त उनकी प्रमुख विजयों का उल्लेख]

नव विजयः—कई महीने तक शिवाजी राज्याभिषेक समारोह में व्यस्त थे। उनका बहुत सा धन खर्च हो गया था। सरकारी खजाना खाली हो चुका था। सेना के लिए उन्हें धन की बड़ी जरूरत थी। यह धन कहां से प्राप्त हो सकता है ? इसकी प्राप्ति शत्रु के राज्यों से ही हो सकती हैं। शिवाजी के राज तिलक की खबर मुगल सम्राट औरंगजेब को जा चुकी थी। वह बहुत ही परेशान और क्रुद्ध हुआ। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति उसकी सत्ता के लिए खुली चुनौती बनती जा रही थी।

मुगल छावनी की लूट :–शिवाजी ने बहादुर खाँ से सलाह वार्ता आरम्भ की ताकि वह असावधान हो जाये। दूसरी ओर वहाँ से ५० मील दूर मुगल राज्य में उत्पात मचने लगा। बहादुर खाँ इस दल को मार भगाने के लिये सेना के साथ उधर बढ़ा। जब वह अपनी छावनी से दूर निकल गया तो सात हजार मराठों के दूसरे दल ने उनकी छावनी पर हमला कर दिया। सारे तम्बू जला डाले तथा उसे पूरी तरह से लूट लिया। इस लूट में मराठों को एक करोड़ का सामान तथा बढ़िया नस्ल के दो घोड़ मिले। ये घोड बादशाह को भेंट दिये जाने वाले थे। कई मुगल अफसर भी पकड़ लिये गये और उनकी मुक्ति के बदले धन की माँग की गई।

मुगल आक्रमणः—फरवरी सन् १६७५ में कोंकण के उत्तरी भाग पर मुगल सेना ने आक्रमण किया। घाटों को पार कर कल्याण नगर पर वह टूट पड़े। कई मकान जला दिये गये। सपन्न लोगों को लूटा गया। वे इस समय मुगलों से संघर्ष नहीं करना चाहते थे। उन्हें अपने किलों की सुरक्षा की व्यवस्था करने के लिए अवकाश आवश्यक था। उनके सैनिक पोण्डा के घेरे में लगे हुये थे। अतः वे मुगलों से नहीं लड़ना चाहते थे। साथ ही वे बीजापुर राज्य को धमकी दे रहे थे, कि वह उन्हें आवश्यक धन दें, अन्यथा वे मुगलों से सन्धि कर बीजापुर पर आक्रमण कर देंगे। बहादुर खाँ भी मराठों से परेशान हो गया। उन्हीं के कारण उसकी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। वह अपने को इतना शक्तिशाली नहीं समझता था कि मराठों का दमन कर सके। अतः उसने शिवाजी के सन्धि प्रस्ताव का स्वागत किया। महीनों तक सन्धि-वार्ता चलती रही। सुलह में जो शर्तें निश्चित हुई वे थीं कि शिवाजी सत्रह किले औरंगजेब को देंगे। शंम्भाजी को छः हजार की मनसब देंगे। तथा भीमा नदी के दाहिने तट के भाग पर शिवाजी का आधिपत्य माना जायगा। बादशाह ने इन शर्तों को मंजूर कर लिया। इस कूटनीतिक मात से बहादुर खाँ बहुत लज्जित हुआ। इससे शिवाजी से बदला लेने के लिये वह व्याकुल हो उठा। वह समझ गया कि शिवाजी जैसे चालाक शत्रु से पार पाना उसके अकेले के लिए सम्भव नहीं है। अतः उसने बीजापुर के मन्त्री 'खवास खाँ' से इस शर्त पर संधि कर ली कि वे दोनों मिलकर शिवाजी पर हमला करेंगे। पर उसके दुर्भाग्य से इसी समय बीजापुर में अधिकार-क्रान्ति हुई तथा 'खवास खाँ' अधिकार हीन हो गया।

बीजापुर में गृह-कलह :– इस समय बीजापुर राज्य में सरदारों में आपस में संघर्ष चल रहा था। वहाँ का शासक 'सुल्तान सिकन्दर आदिल शाह' अल्प वयस्क था। यहाँ के मुस्लिम सरदार दो दलों में बँटे हुए थे। एक दल अफगानों का था और दूसरा दक्षिणी मुसलमानों का। 'खवास खाँ' ने देखा कि बीजापुर पर अफगान-दल छाता चला जा रहा है। साथ ही शिवाजी उसके राज्य के इलाके पर अधिकार करते जा रहे हैं। इन दो संकटों से अपनी रक्षा करने के लिये उसने मुगल सूबेदार (खाने जहान) से संधि कर ली। इस संधि के सिलसिले में खवास खाँ बहादुर खाँ से १० अक्टूबर १६७५ को भीमा नदी के तट पर एक स्थान पर मिला। इन दोनों में निम्नलिखित शर्तें तय हुयीं :–

१–अली आदिलशाह की पुत्री का विवाह एक मुगल शाहजादे से कर दिया जाय।

२–शिवाजी से होने वाले युद्धों में खवास खाँ स्वत: सेना का अधिनायकत्व करे।

३–सुल्तान सिकन्दर को शाह की पदवी प्रदान की जाय।

४–बीजापुर से मुगल बादशाह को जो कर मिलता है वह माफ कर दिया जाय।

पोण्डा विजय :– गोवा के दक्षिण में पोण्डा तथा कारवान सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान थे। इन स्थानों पर अधिकार होने पर पुर्तगालियों पर अंकुश लगाया जा सकता था। पर ये स्थान बीजापुर में थे। शिवाजी ने इन स्थानों पर अधिकार करने के लिये अप्पाजी दत्तों को पोंडा के चारों ओर घेरा डालने का आदेश दिया। किलेदार मुहम्मद खाँ ने डट कर उनका सामना किया पर शिवाजी ने उसकी सहायता के लिए युद्ध-सामग्री से भरी चालीस नावें भेजी और स्वत: उसकी सहायता के लिये रवाना हुए। मुहम्मद खाँ ने बीजापुर की सहायता माँगी। इस समय बहलोल खाँ मिरजापुर में पन्द्रह हजार सेना के साथ था। वह पोण्डा की रक्षा के लिए रवाना हुआ पर शिवाजी ने उसके मार्ग में पेड़ काट कर बिछा दिये और रास्ता खोद डाला ताकि सेना आगे न बढ़ सके। परिणाम-स्वरूप उसे वापस जाना पड़ा। कहा जाता था कि उसने शिवाजी से एक लम्बी घूस ले ली थी, इसी कारण वह पोण्डा जाने के बजाय वापस लौट गया।

बदनूर— इस समय बदनूर रियासत पर एक रानी राज्य करती थी, उसको अबला समझ कर उसके सेना-नायक ने राज्य के सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया। रानी ने शिवाजी से सहायता माँगी। उन्होंने रानी की रक्षा की। रानी ने उनकी आधीनता स्वीकार की और कर देना भी मंजूर किया।

सतारा— सतारा भी बीजापुर के अधिकार में था। नवम्बर सन् १६४५ को शिवाजी ने इस पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। यह स्थान उन्हें बहुत पसन्द आया और वे कुछ दिन यहीं रहे इसके निकट ही पार्ली नामक एक किला था। इसे जीत कर शिवाजी ने इसे समर्थ गुरू रामदास को समर्पित किया। रामदास ने इसे आश्रम बनाया तथा पार्ली का नाम हटाकर सज्जन-गढ़ रखा। इसी समय शिवाजी बीमार हो गये। वे इस बीमारी में रामदास जी के पास रहे। कुछ स्वास्थ लाभ होने पर वे राजगढ़ चले गये। इस प्रकार शिवाजी ने बीजापुर राज्य में होने वाले कलह से लाभ उठा कर उसके पश्चिमी भाग पर अधिकार कर लिया। और विजयी हुये।

माँ भवानी के चरणों में युवराज द्वारा वनराज की भेंट

—मनोज निगम 'सप्तम क'

प्रस्तुत ऐतिहासिक घटना के माध्यम से बाल लेखक ने, छत्रपति शिवाजी के पुत्र संभाजी के मन की दृढ़ता, ध्येय के प्रति सच्ची लगन को दिखाते हुये उस पर इतिहासकारों द्वारा किये गये इस आरोप, कि संभाजी एक पतित चरित्र का व्यक्ति था, को स्पष्ट रुप से निराधार बताने का यत्न किया है।

तुलजापुर की माँ भवानी का एक विशाल मन्दिर। यह वही माँ भवानी हैं जिनके आराधक थे हिन्दू पद पाद शाही के संस्थापक छत्रपति शिवाजी।

चारों ओर गहन निस्तब्धता। इस निस्तब्धता को भंग करती है कुछ घोड़ों के टापों की आहट। मन्दिर के सामने आकर रुकते हैं कुछ १५-१६ वर्षीय किशोर घुड़सवार प्रविष्ट होते हैं माँ भवानी के मन्दिर में, घोड़ों को बाहर छोड़कर। माँ भावानी के सम्मुख नत-मस्तक। तभी वहाँ का पुजारी उनके प्रमुख को सम्बोधित करते कह उठता है। "युवराज! यदि तुल चक्रवर्ती सम्राट बनना चाहते हो तो चढ़ाओ बलि जीवित शेर की माँ भवानी के चरणों में।" युवराज उत्साहित हो कर कहता है 'यह काम तो सम्पादित करके ही रहूंगा। तुरन्त सारे किशोर निकल पड़े हो कर सवार अपने घोड़ों पर गहन जंगलों की ओर। गहन जंगल के मध्य एक ऊँचे पेड़ पर बनायी जाती है मचान। सभी किशोर बैठते हैं उस मचान पर शिकार की खोज में । पर चक्रवर्ती सम्राट बनने का स्वप्न संजोने वाला युवराज छिपता है उसी पेड़ की ओट में। सब करते हैं प्रतीक्षा गहन रात्रि की। आखिर क्यो ? अपने शिकार के स्वागत की तैयारी में।

रात्रि का अन्धकार बढ़ने लगा और वनराज ने उसी पेड़ से बंधी बकरी पर झपट्टा मारने के लिये लगाई लम्बी छलांग। लेकिन बकरी की रस्सी को काटता है छिपा युवराज जिससे भाग खड़ी हुई बकरी। वनराज के हाथों छूटता है उसका शिकार पर उसी क्षण उपस्थित होता है लगन का पक्का युवराज। पलक झपकते ही युवराज ने खींच ली तलवार। पर यह क्या ? कौंध उठा उसके मस्तिष्क मे एक विचार "निहत्थे के साथ क्षत्रिय हथियार ले कर युद्ध नहीं करते। दूसरे ही क्षण देता है फेंक तलवार। फिर युवराज एवं वनराज में प्रारम्भ होता है मल्ल युद्ध। प्रयत्न, युवराज को चीर कर रुधिर का पान करना। वहीं युवराज का प्रयास वनराज के जबड़ों को अपने बश में करके लगाना फन्दा वनराज के गले में। प्रातःकाल की मगल वेला का आगमन पक्षियों का कलरव प्रारम्भ होने को। उसी समय मिलती है सफलता युवराज को। वनराज के जबड़ों को वश में करने की और गले में फन्दा लगाने की।

मल्लयुद्ध की थकान रह जाती है एक ओर। कारण ? और कारण स्पष्ट है कि अपना कार्य शीघ्र सम्पन्न हो यही उमंग है उस किशोर मन की। अतः हृदय में एक

विजय की भावना को सँजो कर अपने-२ घोड़ो पर हो कर सवार चल पड़े वे किशोर माँ भवानी के मन्दिर की ओर। माँ के सम्मुख नत-मस्तक होकर युवराज चढ़ाता है शेर की बलि। पर गले में लगे फन्दे एवं रात्रि की थकान ने उड़ा दिये थे पहले ही प्राण पखेरू वनराज के।

बार-बार इस प्रसंग को पढ़ते-२ मन हो उठता है जिज्ञासु-आखिर कौन है वह साहसी किशोर। प्रस्तुत है उसका परिचय—उस पराक्रमी, लगनशील साहसी युवराज का नाम छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र संभाजी था।

पंजाबी पहेली

१— दो कबूतर पालो-पाली खब ओना दे काले
टोर ओना दी मटकी-मटकी,
रब ओना नू पाले।

२— इक कुड़ी लै परांदा टुर पाई।

३— इक फकीर, ओदे पेट विचलकीर।

४— चार घुंट दा इक नगर, चार कुएँ बिना पानी,
अठारा चोर छिपे बैठने, बिच-बिच इक रानी।

५— घर दी करदा वै घरवाली,
लोग कैंदे ने आफत क्यों पाली।

६— ज्योंदे जी न आने पाया, दुश्मन जिसदे पास,
कौन वै ऐसा वीर बताओ, पुछदा वै इतिहास।

उत्तर :— १— आंखा (आँख) २— सुई-तागगा (सुई-तागा) ३— कनक (गेहूँ)
४— कैरमबोट ५— कुत्ता ६— चन्द्र शेखर आजाद

—अनूप तनेजा अष्टक 'ब'

प्रति शिवाजी वासुदेव बलवंत फड़के

—सुधीर कुमार अवस्थी अष्टम् 'क'

"स्वाधीनता संग्राम की जो अलख, श्रीमंत नाना साहब पेशवा ने प्रज्वलित की थी, जिसे विक्टोरिया ने अपनी कूटनीति के द्वारा बुझाने का एक कुत्सित प्रयास किया था उसके इस कुत्सित प्रयास को नाकाम करने वाले वीर पुंगव वासुदेव बलवंत फड़के को श्रद्धा-सुमन समर्पित कर रही है बाल-लेखक की लेखनी।

पूना में कोलाहल। कोलाहल का विषय दिवारों पर छपे पोस्टर, जिन पर बम्बई के गवर्नर सर रिचर्ड टेम्पल द्वारा ५० हजार रुपये देने की घोषणा। लेकिन किसको? ······किसलिए? जो जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाये देश प्रेमी वासदेव बलवंत फड़के को।

धमाके पर एक और धमाका। कारण! दीवारों पर नये पोस्टर जिन पर लिखा था······"मैं वासुदेव बलवत फड़के, श्रीमंत नाना साहब पेशवा की ओर से यह घोषणा करता हूं कि बम्बई के गवर्नर सर रिचर्ड टेम्पल का जो सर काट कर लायेगा उसको इनाम स्वरूप सरकार द्वारा घोषित रकम की डेढ़ गुनी रकम अर्थात् ७५ हजार रुपये दिये जायेंगे।

इन सब का कारण? ······कारण स्पष्ट था। बम्बई का एक 'फाइनेन्स कामिसरेट' का आफिस। वासुदेव बलवंत फड़के अवकाश का प्रार्थना पत्र लिये खड़े हैं साथ में संलग्न है माँ की बीमारी का तार जिसमें लिखा है— "माँ सख्त बीमार है, जल्द आओ।" लेकिन अवकाश नहीं। दो बार छुट्टी माँगने पर भी छुट्टी न मिली। निराश होकर वासुदेव बिना स्वीकृति के ही अपने गाँव श्रीधर के लिए रवाना हो गये। रात होने से पूर्व वे अपने गाँव जा पहुँचे।

लेकिन शायद उनको अपने माँ के दर्शन प्राप्त नहीं थे। माँ पहले ही सदा-सर्वदा के लिए अपनी आँखें बन्द कर चुकी थीं। फड़के फूट-फूट कर रो पड़े। सोचने लगे लानत है ऐसी गुलामी पर, ऐसी जिन्दगी पर जिसने माँ के दर्शन भी न करने दिए। माँ की मृत्यु बढ़कर भारत-माता का रूप ले लेती है।

निश्चित होता है मन में। शुरुआत होती है सशस्त्र लड़ाई से। शस्त्र क्या तो कुछ छोटी बन्दूकें और मुख्य रूप से कुल्हाड़ियाँ। सेनापति तो वासुदेव और साथी कौन? ·········जंगलों में रहने वाले डकैत उमाजी नाइक तथा रामो शी। तीनों लोगों ने मिलकर एक सेना तैयार करना सोचा। परन्तु आर्थिक समस्या? ···

धनी लोगों से पैसा माँगा लेकिन व्यर्थ। देश सेवा के लिए डकैती शुरू की। मुख्य रूप से अंग्रेजों के मकानों पर। प्रतिदिन ही तीनों साथियों के फोटो तथा समाचारों से अखबार पूरित होते। डकैती में कुछ सफलताएँ मिली। धन मिला। एक छोटी सी सेना तैयार की गई।

सेना की पहली सफलता घामरी तथा तोरण के किलों पर जहाँ छत्रपति शिवाजी ने प्रथम झंडा लहराया था, अपना झंडा फहरा कर। आगे ब्रिटिश कार्यालय, थाने, कोतवाली को आग से भस्मीभूत कर दिया गया। सफलता की दूसरी सीढ़ी पर कदम रक्खा। सेना बढ़ती रही और ब्रिटिश के आमबाग कार्यालय जो अंग्रेजों का गढ़ था हमला बोल दिया। आसानी से उसे जीत लिया। अब तो ब्रिटिश सरकार परेशान हो गयी। पूना में कर्फ्यू लागू हो गया। धारा १४४ चल रही थी। वासुदेव से परेशान होकर मेजर डेनियल की विशेषरूप से नियुक्ति हुई। जिसमे २२०० सैनिक थे।

इधर उमाजी नाईक, रामो शी और वासुदेव पहली सफलता से काफी प्रसन्न। फिर भी आर्थिक समस्या, सैनिकों की समस्या, शस्त्रों की कमी आदि से चिंतित वासुदेव शारीरिक अस्वस्थता के कारण अपने एक साथी श्री साठे के साथ विश्रामार्थ एक मन्दिर में लेटे हुये थे। अर्धग्लानि अवस्था में निद्रित वासुदेव थे।

ठीक उसी समय मेजर डेनियल उधर आ पहुंचा। लालटेन की रोशनी में ही उसने पहचान लिया। आखिर नरसिह को कौन नहीं पहचानेगा। तुरन्त ही सैनिकों के द्वारा वासुदेव घेर लिये गये। सभी की बन्दूकों का मुँह वासुदेव की ओर था। तत्पश्चात् एक गोरा तलवार लेकर उनकी पीठ पर बैठा। नरसिह क्रुद्ध हो गया। उसने अकेले ही डेनियल को द्वन्द युद्ध के लिये ललकारा। लेकिन अब क्या होने वाला था। नरसिह को जंजीरों में जकड़ लिया गया।

नियमानुसार न्याय का नाटक चला। चौथे दिन उन्होंने एक बयान दिया "कुत्ते के समान जीने वाली बारी हम लोगों पर आई। इसके विरुद्ध हमने ब्रिटिश सरकार के प्रति विद्रोह किया। अगर हमारी यह योजना सफल हो जाती तो अंग्रेजों को भगाकर हिन्दी प्रजातांत्रिक राज्य की स्थापना करते। ऐ भारतीयो! हम आपका सपना पूर्ण न कर सके। इसके लिए हमको माफ करना।

खचाखच कोर्ट भरा हुआ। चारों ओर वासुदेव के नाम की चर्चा थी। अन्त में उनको आजन्म कारावास की सजा हुई। वह भी अपनी मातृभूमि पर नहीं अपितु मातृ भूमि से अति दूर ऐडन में।

उनकी, जंजीरों में जकड़कर, पानी के जहाज के द्वारा ऐडन के लिए खानगी की। बीच समुद्र में सावरकर का इतिहास दोहराने की कोशिश की। अथाह जल वाले समुद्र में कूद पड़े। और निर्भयता की पराकाष्ठा ने सफलता के द्वार खोल दिये। और वे फ्रांस के तट पर जा पहुँचे। परन्तु ब्रिटिश सैनिकों की कूटनीति के कारण वे फिर पकड़ लिए गये।

पुनः ऐडन के लिये रवाना हुये। अन्त में १८८७ इसी माह की १७ तारीख को उन्होंने सदा के लिए हमसे नाता तोड़ दिया। पूना की दीवारों पर लगे हुये पोस्टर्स आज भी याद दिलाते हैं, भारतीय मन कह उठता है कि सेनापति वासुदेव की जय।

०००

शपथ

"देश को स्वाधीनता दिलाने, सर्व सम्पन्न बनाने, शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में सम्पनता लाने के लिये हम जीवन-पर्यन्त मनसा, वाचा, कर्मणा अविराम साधना करेंगे।

—अजातशत्रु पंडित दीनदयाल उपाध्याय

करारा तमाचा

मलय चतुर्वेदी, अष्टम 'क'

वासुदेव बलवन्त फड़के को दी गयी काले पानी की सजा, अन्य क्रान्तिकारी नवयुवकों के हृदय में जगी क्रान्ति की ज्वाला को भड़काने में घृत का कार्य कर गई। प्रस्तुत हैं नवयुवकों के साहसी काय, बाल लेखनी के माध्यम से ... ...

रात घनी हो चुकी थी, सर्वत्र अंधकार छाया हुआ था। एक कोठरी में दीपक अपना मध्यम प्रकाश बिखेर रहा था। उस कोठरी में तीन-चार युवक बैठे किसी विषय पर विचार कर रहे थे। विचार करने का विषय था अपने क्रान्तिकारी साथियों के अपमान का बदला लेना। काफी सोच-विचार के पश्चात् एक योजना बनाई गई। जिसके अनुसार बम्बई महानगर के रानी के बाग में स्थित महारानी की प्रतिमा के मुख पर कभी न छूटने वाला रंग लगा कर उसके गले में जूतों की माला डाली जाय।

अपनी योजना को पूरा करने के लिए उन युवकों ने कुछ विशेषज्ञों की मदद से इच्छित रंग प्राप्त कर लिया जो उन वैज्ञानिकों के वर्षों के परिश्रम का परिणाम था। योजनानुसार उन्होंने एक जूतों की माला भी बना ली।

सारा सामान तैयार हो जाने के बाद उनके मन में यह प्रश्न उठा कि इस कार्य को करेगा कौन? इस कार्य को करना सहज कार्य नहीं था। रानी के बाग में सदैव कड़ा पहरा रहता था। अन्त में दो भाई इस कार्य को करने को तैयार हो गये। निश्चित योजना के अनुसार यह कार्य रानी विक्टोरिया के जन्म दिवस के एक दिन पूर्व रात्रि को होना था।

रात्रि की कालिमा सर्वत्र व्याप्त थी। दो व्यक्ति गोरे सिपाहियों की नजरों में धूल झोंकते हुये रानी की प्रतिमा के सामने पहुँच गये।

अब उन दोनों में विवाद छिड़ गया। छोटा भाई कहता था कि मैं रंग रानी के मुँह पर लगाऊँगा और बड़ा भाई कहता था नहीं मैं। विवाद को बढ़ने के पूर्व उन्होंने तय कर लिया कि एक रानी के मुँह पर रंग लगायेगा तो दूसरा जूतों की माला पहनायेगा।

पहले बड़ा भाई सीढ़ी लगा कर ऊपर चढ़ा। उसने अच्छी तरह रानी के मुँह पर काला रंग लगाया और दूसरे ने उन्हें जूतों की माला पहना दी। इतना काम करने के बाद वो जैसे आये थे वैसे ही चले गये, किसी को इस घटना की खबर नहीं लगी।

प्रात.काल सारे देश में यह ख़बर आग की तरह फैल गयी, उसी समय इस अपराधी को पकड़ाने वाले के लिये इनाम घोषित किया गया और देश विदेश से उस रंग को मिटाने के लिये विभिन्न रासायनिक तत्व मँगाये गये, परन्तु उनका कोई प्रभाव उस रंग पर नहीं पड़ा क्योंकि वह कभी न छूटने वाला रंग था।

अन्त में महारानी के मान-सम्मान की रक्षा के लिये उस प्रतिमा को वहाँ से हटा दिया गया। इस प्रकार उन नवयुवकों ने अपने क्रान्तिकारी दोस्तों के अपमान का बदला ले ही लिया।

तीन फूल और तीनों न्योछावर

—विवेक भागवत अष्टम 'क'

("चरण कमल पर माता तेरे प्राणों का संगीत निछावर' का स्वर गूंजित करता है मानस पटल को । ऐसे में ही)
(बाल लेखक की लेखनी याद दिला रही चाफेकर बन्धु "दामोदर, बालकृष्ण एवं वासुदेव" की । गूंज रहे हैं)
(वासुदेव के वाक्य—भैया माँ ने स्वयं ही हाथ में पिस्तौल देते हुए कहा था भारत माता के चरणों में दो पुष्प)
(पहले ही समर्पित हैं और आज तीसरा भी समर्पित कर रही हूँ ।)

"जिस प्रकार कोई प्रबल हाथी पागल होने के पश्चात् सब कुछ ध्वस्त करता फिरता है, उसी प्रकार हमारी सरकार की अवस्था हो गई है । खून करने वाले पर खून चढ़ने के बजाय वह खून हमारी सरकार पर चढ़ गया है ।"

ये वाक्य थे लोकमान्य तिलक की लेखनी से, केसरी पत्र के एक सम्पादकीय लेख में । ये वाक्य जिस प्रसंग के कारण लिखे गये, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार भड़क उठी और उन्हें कारागृह की कोठरी में ठूँस दिया वह प्रसंग था :—

पूना में प्लेग का हाहाकार, घर-घर में मृत्यु का ताण्डव । जिन घरों में बीमारी पाई जा रही है उन्हें जबरदस्ती खाली कराया जा रहा है । इतना ही नहीं जो संस्थायें कुछ राहत कार्य कर रही हैं; उसमें भी बाधायें ! सारे पूना शहर का ही नहीं अपितु पूरे महराष्ट्र का ब्रिटिश शासन पर क्रोध । उसमें भी पूना के रैण्ड साहब पर जिसने जलती हुई आग में मिट्टी का तेल छिड़कने का प्रयास किया सबसे अधिक क्रोध ।

कीर्तनकार हरिपन्त चाफेकर का कीर्तन । पीछे संगीत में साथ देने वाले उनके तीन पुत्र । कीर्तन का प्रसंग सुनते ही कंस का वध करने वाले बालकृष्ण की स्फूर्ति उनमें चढ़ आयी । मन में निश्चय, रैण्ड का वध करना ही चाहिए । गुनहगार को मौत की सजा मिलनी ही चाहिए । स्वातंत्र्य वीर लोकमान्य तिलक से मार्ग दर्शन प्राप्त करने के लिये उनके निवास स्थान पर गये । योजना पूर्ण बन गई, २२ जून का दिन निश्चित किया गया, जिस दिन महरानी विक्टोरिया का ६० वाँ राज्याभिषेक दिवस मनाया जा रहा होगा, और अंग्रेज पूना के गणेश खिंड में रात को शराब पीकर नाचते रहेंगे और रात को घर लौटेंगे ।

दो भाई दामोदर पंत और बालकृष्ण पंत चाफेकर रात को अपने साथियों सहित गणेश खिंड की तरफ निकलते हैं । एक पेड़ के झुरमुट के पास जाकर योजना ठीक-ठीक बनती है । घोड़ागाड़ी कहाँ से आयेगी ? रैण्ड की घोड़ागाड़ी कौन सी होगी ? उसके साथ आकर दौड़कर कौन बतायेगा ? इत्यादि । बारह बजे, सवा बारह बजे, साढ़े बारह बजे, कोई खबर नहीं । मन सशंकित होने लगा, क्या योजना असफल होगी ? क्या रैण्ड रात भर क्लब में ही रहेगा ? लेकिन नहीं बैण्ड के स्वर; जिन पर नाच हो रहा था, बन्द हो गये, आशा बँध गई कि रैण्ड जरूर आयेगा । तभी एक साथी श्रीकृष्ण भिड़े दौड़कर आ रहा था और चिल्ला रहा था, रस्सी बाँधो जल्दी, तैयार हो जल्दी, गाड़ी आने वाली है ।

रस्सी बँध गयी। अंधेरी रात में गाड़ी चल रही थी... टप-टप-टप। तभी कोचमैन अपने को संभालने से पूर्व रस्सी से अटक कर गिर पड़ा। दोनों भाई तैयार तो थे ही तुरन्त गाड़ी पर चढ़ गये बन्दूक से धाँय-धाँय की आवाज। लेकिन ? यह तो अर्यस्ट था, रैण्ड नहीं, रैण्ड की गाड़ी तो पीछे से आ रही थी। तभी दूसरी गाड़ी आती है, कुछ समझने से पूर्व ही दोनों भाई घोड़ागाड़ी पर चढ़ गये फिर धाँय-धाँय की आवाज। रैण्ड वहीं ढेर हो जाता है। रैण्ड की पत्नी चिल्लायी.........Save-save, help-help. मालकम साहब की गाड़ी पीछे से आ रही थी। लेकिन तब तक दोनों भाई अपना कार्य यशस्वी करके वहाँ से भाग निकले। हाहाकार मच गया नाकेबन्दी की गई जिससे कोई शहर के बाहर न जा सके। लेकिन फिर भी दोनों बन्धु पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर पूना से बम्बई, बम्बई से हैदराबाद भाग निकले।

उधर जयचंद के रूप में द्रविड़ बन्धु अंग्रेजों से मिले। सुराग मिल गया। दोनों भाई हैदराबाद में पकड़े गये। अपने भाइयों के पकड़े जाने की खबर सुनते ही उनका छोटा भाई बासुदेव पंत चाफेकर गोपाल द्रविड़ को प्राण दण्ड देने के पीछे लगा।

बालकृष्ण और दामोदर पंत पर मुकदमा। कोर्ट खचाखच भरा हुआ था। प्रत्येक की तलाशी लेकर अन्दर जाने दिया जा रहा था। किन्तु जैसे ही गोपाल द्रविड़ गवाह के कटघरे में खड़ा हुआ वैसे ही कचहरी में पिस्तौल का धमाका, गोपाल वहीं ढेर हो गया। गोली वासुदेव ने ही मारी थी। अब तो निश्चित था ही, तीनों बन्धुओं को फाँसी की सजा। मरने से पहले अन्तिम इच्छा अपने गुरू लोकमान्य तिलक से मिलने की, उनके चरणों की रज लेने की। लोकमान्य तिलक के कर्मयोग के सिद्धांत का पालन करने वाले चाफेकर बन्धु "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन......श्लोक को दोहराते हुए स्वयं अपने हाँथों से फाँसी का फँदा गले में डालकर अमरत्व को प्राप्त हो गये और छोड़ गये हम लोगों के लिये प्रेरणा का दिव्य संदेश।

आइये ! अब थोड़ा हँस लें।

१. एक शराबी नशे में झूमता जा रहा था। मार्ग में एक ताँगे से टकरा गया। इस पर ताँगे वाला बोला—अबे ! एक तरफ चला कर।

शराबी—अच्छा।

थोड़ी देर बाद वह एक घर के दरवाजे की टेक लेकर खड़ा हो जाता है। दरवाजा खोले जाने पर वह गिर पड़ता है।

वह बोला—ऐ ताँगे वाले ! तू यहाँ भी ठोकर मारने आ गया।

मयंक उपासनी 'सप्तम 'क'

आइए !

कुछ दिमागी कसरत करें.................

-प्रदीप सिन्धी अष्टम 'क'

१. एक कक्षा के 800 विद्यार्थी परीक्षा में प्रवेश हुये जिनमें से 500 विद्यार्थियों ने गणित में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण की और 100 विद्यार्थियों ने अंग्रेजी तथा गणित दोनों में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किये। बताओ कितने विद्यार्थियों ने अंग्रेजी में प्रथम श्रेणी प्राप्त की, जब कि सभी विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये हैं ?

२. विभिन्न प्रकार की 15 वस्तुओं को किसी भी क्रम में रख कर अधिक से अधिक कितने क्रम बना सकते हो ?

३. एक टोपी, एक रूमाल व एक जोड़ी दस्ताने का मूल्य 20 रुपये है। एक जोड़ी दस्ताने का मूल्य टोपी से 9 रु० ज्यादा है। एक रूमाल का मूल्य एक जोड़ी दस्ताने व टोपी के मूल्य से 16 कम है। तो टोपी, रूमाल व एक जोड़ी दस्ताने का मूल्य बताओ।

४. विभिन्न भारों के चार ऐसे बाट बताइये जिनके भार का योग 40 किलो ग्राम हो व उनसे 1 से लेकर 40 तक जितने चाहे उतने किलो ग्राम भार तौले जा सकते हैं ?

५. वह तीन अंक बताओ जिनको जोड़ने व गुणा करने पर एक ही संख्या आती है।

६. एक दूध तौलने वाले के पास 4 लीटर व 7 लीटर के दो बाट हैं। उसको एक ग्राहक को 5 लीटर दूध तौल करके देना है तो वह किस प्रकार देगा ?

[उत्तर पृष्ठ २५ पर देखिये]

क्या आप जानते हैं ?

—सुखदेव प्रसाद अष्टम ख

[१] दोनों राष्ट्रपतियों की हत्यायें नागरिक अधिकारों को लेकर हुई

[२] दोनों राष्ट्रपतियों की हत्यायें शुक्रवार को हुई।

[३] हत्यायें राष्ट्रपतियों की पत्नी के सामने हुई।

[४] दोनों राष्ट्रपतियों के सिर के पीछे गोली मारी गई।

[५] राष्ट्रपति लिंकन सन् १८६० को व राष्ट्रपति कैनेडी १९८० को चुने गये थे।

[६] दोनों राष्ट्रपतियों के उत्तराधिकारी दक्षिण अमेरिका के थे।

[७] लिंकन के उत्तराधिकारी जानसन का जन्म १८०८ में हुआ था व कैनेडी के उत्तराधिकारी लिंडन बी. जानसन का जन्म १९०८ में हुआ था।

[८] दोनों के हत्यारों की हत्यायें उन पर मुकदमा चलने के पहले हुई थी।

[९] लिंकन का हत्यारा जानबूथ और कैनेडी का हत्यारा ली हार्वे ओस्वाल्ड दोनों दक्षिण अमेरिका के थे।

[१०] लिंकन के सेक्रेटरी (जिसका नाम कैनेडी था) उसने लिंकन को थियेटर में जाने को मना किया था, तथा वहीं थियेटर पर उनकी हत्या हुई व कैनेडी के सेक्रेटरी (जिसका नाम लिंकन था) ने भी उन्हें डलास (जहाँ उनकी हत्या हुई) जाने से रोका था।

कर्त्तव्य

—रामनरेश 'सप्तम क'

प्रस्तुत लघु कथा के माध्यम से बाल लेखक ने अपने कर्तव्य के प्रति किस प्रकार जागरूक रहना चाहिये समझाने का यत्न किया है।

मिलन अपने घर जा रहा था। रास्ते में उसने एक पर्स पड़ा देखा। उसने झुक कर पर्स उठाया और आसपास देखा कि कोई उस पर्स को ढूँढ तो नहीं रहा है। लेकिन कोई उस पर्स को ढूँढ नहीं रहा था। उसने उस पर्स को खोलकर देखा तो उसमें ढेर सारे रुपये थे। उसने उनको गिना तो उसने देखा कि कुल २५० रु० हैं। उसने सोचा कि उसके अध्यापक, माता और पिता उससे यही कहा करते थे कि "दूसरों की चीज लेना महापाप है।" उसने सोचा कि इस पर्स को थाने पहुँचा दिया जाये जिससे सही व्यक्ति के पास यह पर्स पहुँच जाये। जब वह थाने पहुँचा तो उसने देखा कि एक आदमी गिड़-गिड़ा कर कह रहा है कि "मैं तो लुट गया। मेरी महीने भर की तनख्वाह कहीं खो गयी। अब मैं अपने परिवार वालों का पेट कैसे भरूँगा"। मिलन ने थानेदार से कहा कि "यह पर्स मैंने सड़क पर पाया है आप इस को इसके मालिक के पास पहुँचा दें।" पर्स को देखते ही वह आदमी खुशी से चिल्ला पड़ा कि "यही मेरा पर्स है, यही मेरा पर्स है" थानेदार ने उससे पूछा "कि इसमें क्या है। उस आदमी ने कहा कि इसमें मेरी एक फोटो और २५० रु० हैं।" थानेदार ने उसे पर्स दे दिया। उस आदमी ने मिलन को इनाम देना चाहा, तो मिलन ने इनाम न लिया और कहा "यह तो मेरा कर्तव्य था।" मिलन खुशी-२ घर की ओर चल पड़ा शायद उसे इतनी खुशी उस पर्स को ले लेने में न होती।

क्या आप जानते है कि. . . ?

संकलनकर्त्ता —जय प्रकाश सिंह 'अष्टम क'

१. शनि-ग्रह को सूर्य की परिक्रमा करने में २९ वर्ष ६ माह लगते हैं।
२. चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर २६ दिन ६ घण्टे ४३ मिनट ५६ सेकेण्ड में पूर्ण करता है।
३. संसार का सबसे भारी एवं बड़ा मोती 'होप' है। इसका भार १८०० ग्राम है।
४. संसार की सबसे बड़ी चट्टान 'ग्रेटवथिटर रीफ' है जो आस्ट्रेलिया में स्थित है।
५. सबसे लम्बे बाल स्वामी पंडारा सलाही के हैं जिनकी लम्बाई २६ फुट है।
६. रोमेश बेदी की उँगली सबसे बड़ी है, जिसकी लम्बाई ९.४ इंच है।
७. संसार के सबसे छोटे (ऊँचाई) व्यक्ति का नाम कालिबन फिलिप्स है जिसकी ऊँचाई ६५ से.मी. है।

मेरा जीवन लक्ष्य

—अनुपम त्रिवेदी अष्टम 'क'

[जीवन का लक्ष्य निर्धारण करने की यही आयु रहती है। शेष रहता है आगे का काल उसके अनुरूप चलने का, कथनी एवं करनी में साम्य लाने का। प्रस्तुत लेख में लेखक ने व्यक्त किये हैं अपने हृदयोद्‌गार—]

आज मैं अपने जीवन की उस अवस्था में पहुँच चुका हूँ, जहाँ मैं यह विचार करने को बाध्य हूँ, कि अपने भावी जीवन को कैसा सम्पादित करूँ? सोचता हूँ, कि क्या मैं पाश्चात्य जगत के घोर कुत्सित सिद्धान्त Eat drink and be merry का अनुसरण करूँ? मेरा अंतरमन मुझको धिक्कारता है, कि अपनी पावन संस्कृति, जो एक दर्पण है, और जिसमें आते ही कार्यों का औचित्य अनौचित्य सभी कुछ प्रतिबिम्बित हो जाता है तथा जिस संस्कृति में "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्" का पावन उद्‌घोष है, उसको विस्मरित कर पाश्चात्य जगत का अंधानुकरण करूँ? मन में प्रबल झंझावात उठते हैं। ऐसे ही झंझावात में मुझे याद आ पड़ी, महाकवि मैथिली शरण गुप्त की यह पंक्ति—

"मनुष्य है वही जो मनुष्य के लिए मरे"

इस पंक्ति को हृदय पटल पर ठीक रूप से बिठा ही रहा था कि मेरी दृष्टि सामने पुस्तकालय में पड़ी पुस्तक पं० दीनदयाल जी द्वारा लिखित "राष्ट्र जीवन की दिशा की ओर" पड़ी। उसमें अंकित यह कथन मेरे लक्ष्य निर्धारण का सम्बल बनता है। कथन है—

"आज अपने देश में करोड़ों ऐसे अभावग्रस्त बन्धु हैं, जो मानवोचित अधिकारों के उपभोग से वंचित हैं। वास्तव में मैली-कुचैली बस्तियों में अभाव एवं रोगों के बीच जिन्दगी बसर करने वाले ये बन्धु ही हमारे "नारायण" हैं। इनकी सेवा हमारा मानवोचित लक्ष्य है।"

अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद मैं अपना सम्पूर्ण जीवन समाज के इन्हीं नारायणों की सेवा में लगाऊँगा। कई भाइयों के मन मे यह प्रश्न उठता होगा कि मैंने एक डाक्टर, एक वकील, एक इन्जीनियर या एक आई० ए० एस० अधिकारी बनने के महान लक्ष्य को अपने जीवन का लक्ष्य क्यों नहीं बनाया? मेरे विचार से इन सब रूपों में मनुष्य का जीवन-स्तर स्वामी विवेकानन्द के दरिद्र नारायण से काफी ऊपर उठ जाता है, जिससे उसकी कथनी और करनी में भारी अन्तर पड़ जाता है। मेरे सम्मुख कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जो मुझे बार-बार संकेत करते हैं कि "अपनी माटी अपना देश" इसका विस्मरण प्रायः बड़े पदों पर पहुँचने पर हो ही जाता है।

उदाहरण है, नोबुल पुरस्कार विजेता डा० हरगोविन्द खुराना का। क्या इस माटी से प्राप्त अन्न-दूध के प्रति उनका यही कर्त्तव्य था, कि वे अपने करोड़ों अभावग्रस्त बन्धुओं को छोड़ कर चकाचौंध से भरी अमेरिका का नागरिकत्व स्वीकार करते। ऐसी प्रतिभा का भारत

माँ को क्या लाभ ? आज ऐसी अनेकों प्रतिभायें विदेशों की ओर पलायन कर रही हैं। हममें से अनेकों लोग आज यही स्वप्न देख रहे हैं। हमें तो उस छोटे से देश इज़राइल से सबक लेना होगा। सन् १९४८ में जब वह अस्तित्व में आया तब वहाँ के कर्णधारों ने विश्व भर के यहूदियों का आह्वान किया, कि वे राष्ट्र निर्माण में सहयोग दें और वे यहूदी, अपने ऐश्वर्य और वैभव पर लात मार कर, दौड़ पड़े जेरूशलम की ओर। क्या स्वतन्त्रता प्राप्ति पर हमारे यहाँ यह भाव जगा ? आज इसी भाव को हमें सर्वत्र राष्ट्र में जगाना है। इसके लिये कुछ को उदाहरण स्वरूप खड़ा होना होगा। प्रारम्भ अपने से ही होता है। मैंने समाज के इन नारायणो की सेवा करने का जो लक्ष्य निर्धारित किया है, उसको पूर्ण करने के लिए मुझे सदैव परमपिता परमेश्वर का शुभाशीष, गुरुजनों का मार्ग दर्शन और सहयोगी बन्धुओं का स्नेह मिलता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं आप का भी आह्वान करता हूँ, कि आप भी इसी परिपेक्ष्य में अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करें।

पृष्ठ २२ के प्रश्नों के उत्तर—

[1] 400 विद्यार्थी अंग्रेज में प्रथम श्रेणी प्राप्त होंगे।

[2] 1307674365000

[3] एक जोड़ी दस्ताने = 13·50 रु०, टोपी = 4·50 रु०
एक रूमाल = 2·00 रु०

[4] 1 किलोग्राम, 3 किलोग्राम, 9 किलोग्राम, 27 किलोग्राम।

[5] 1, 2, 3

[6] पहले वह 4 लीटर के भर का 7 लीटर वाले बर्तन में डाल देगा। फिर 4 लीटर के बर्तन को भर डालेंगे तो 1 लीटर जो शेष रह जायेगा उसे ग्राहक के बर्तन में डाल देंगे। फिर 4 लीटर को भर कर डाल देने से ग्राहक के पास 5 लीटर दूध हो जायेगा।

'लौट के बुद्धू घर को आये'

—अलिन्द पितरिया 'षष्ठ ख'

एक बार एक सेठ जी को पुत्र प्राप्ति हुई। उन्होंने ज्योतिषी को बुलाकर पुत्र का नामकरण करने को कहा। ज्योतिषी ने कहा, "अच्छा सा नाम रख दूँ।"

लाला जी प्रसन्न भाव से बोले, "बिलकुल"।

पण्डित जी ने अपना पत्रा खोलकर लड़के का नाम रख दिया 'छेदालाल'।

जब लड़का थोड़ा बड़ा हुआ और दोस्तों के साथ खेलने बाहर जाने लगा तो उसके दोस्त उसे 'छिद्दू-छिद्दू' कह कर चिढ़ाने लगे। बेचारा बहुत खिन्न हुआ। जब उसे कोई रास्ता न मिला तो वह अपने धनी पिता का पर्याप्त धन लेकर एक ईसाई शहर में चला गया। कुछ दिन बाद वह चर्च गया और पादरी से अपना नाम बदल देने को कहा। पादरी ने उसका नाम पिछले नाम के आधार पर 'मि० होल' [होल-छेद] रख दिया। बेचारे छेदालाल 'मि० होल' बनकर अपने गांव दुबारा लौट आये।

वह थे तो बहुत प्रसन्न, किन्तु जब लोग उन्हें मि० होल नाम के कारण कहीं मि० होल जल्दी अपने कपड़े खोल' चिढ़ाने लगे तो वे फिर परेशान हुये। और लड़कों के साथ पट्टी ठीक बैठते न देखकर वे फिर भागे और एक मुस्लिम नगर में जाकर रहने लगे।

पहले की भाँति उन्होंने मस्जिद में जाकर मौलवी साहब से नाम के बारे में सलाह-मशविरा की। मौलवी साहब ने उनके प्राचीन नाम 'छेदालाल' की साख कायम रखते हुये उनका नाम 'सुराखअली' रख दिया। बेचारे सुराखअली बड़े खुश। समझने लगे क्या रुतबे वाला नाम पाया है।

खुशी-खुशी वे घर लौट आये। समझते थे कि अब कोई न चिढ़ायेगा, किन्तु लड़के उन्हें राखअली-राखअली चिढ़ाने लगे। बेचारे परेशान होकर फिर भागे और मराठियों के पास पहुँचे।

उन्होंने उनकी समस्या को सुनकर उनका नाम भोंक नारायण करकरे (भोंक=छेद) रख दिया।

जब छेदालाल जी 'भोंकनारायण करकरे' नामके साथ घर लौटे तो लोगों ने उनकी बड़ी हँसी की। उनको सब 'भौंकूनारायण' कहने लगे।

अन्त में परेशान होकर उन्होंने सोचा कि इससे ठीक अपना पहला नाम है। व्यर्थ ही इतना श्रम किया। लोग मुझको चिढ़ायेंगे ही इसलिये नाम न बदल कर केवल पहले वाला नाम रख लिया जाय। इस प्रकार छेदालाल पुन: छेदालाल हो गये। बेचारे छेदालाल को बहुत भागना पड़ा।

जेटयान

—अरविन्द मणि त्रिपाठी अष्टम 'क'

[प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखक ने एक अन्तरिक्ष में चलित औषधालय की परिकल्पना करने का यत्न किया है।]

लोग उत्सुकता से आँखे उठा लेते वह जेटयान रोज आता और कुछ क्षण में ही आँखों से ओझल हो जाता, बस केवल धुँए की एक लकीर रह जाती, और कुछ देर बाद उस लकीर का भी अस्तित्व मिट जाता।

सुरेश रोज टीले पर खड़ा होकर उस जेटयान को देखता रहता जब तक कि वह आँखों से ओझल न हो जाता। उसके चले जाने के बाद वह कुछ सोचता हुआ घर वापिस लौट आता।

वह जेटयान एक चलता फिरता हास्पिटल था. जो डाक्टर मारिनो द्वारा स्थापित किया गया था। उनका विचार था कि जिस प्रकार की चिकित्सा रोगी को वायु मण्डल में विचरण कराकर प्राप्त की जा सकती है, वह और किसी तरह नहीं। उनके द्वारा स्थापित किया गया जेटयान हाल के समान था जिसमें लाइन (पंक्ति) से बेड पड़े थे, जिन पर कई प्रकार के रोगी लेटे थे। यही डाक्टर के रोगी थे।

उधर उस कस्बे में जेटयान के आने का समय हो चुका है। लोग उत्सुकता से आकाश की तरफ नजरें गड़ाये देख रहे हैं।

जेटयान आ रहा है। लोगों को उसकी आवाज सुनायी पड़ रही है। वह आ रहा है परन्तु कुछ अजीब ढंग से, आवाज भी कुछ विचित्र व धुँआ भी कुछ विचित्र है, आवाज काँप रही है।

उधर टीले पर खड़े सुरेश के मन में कुछ विचार उठ रहे हैं कि·· ······जब वह डाक्टर के यहाँ नौकर था तब वही एक ऐसा मनुष्य था, जो डाक्टर के प्रयोग में रुचि लेता था व उस प्रयोग को जानता था। परन्तु डाक्टर ने उसे इस डर से निकाल दिया कि अगर विश्व को उस प्रयोग की जानकारी सुरेश के द्वारा मिल गयी तो दूसरे वैज्ञानिक उसके इलाज के रहस्य को जान लेंगे।

उसी समय जेटयान सुरेश के सिर के ऊपर से निकल गया और उसके विचारों की श्रृंखला भंग हो गयी।

अचानक विमान कुछ दूर जाकर लड़खड़ाया और विस्फोट के साथ जलने व नीचे आने लगा और गिर पड़ा। सुरेश दौड़ा-२ पास गया। सब कुछ जल चुका था केवल कुछ दूरी पर एक अध जली डायरी पड़ी थी। सुरेश ने उसे उठाया और पृष्ठ खोल कर पढ़ने लगा। एक पृष्ठ पर············

४·१२·२०८८ सन् २०८८

मैंने सुरेश को निकाल कर अच्छा नहीं किया। मैं उसे फिर बुलाऊँगा और उससे माफी माँगूँगा। मैं जरूर जाऊँगा, यह गलत है, मैं उससे प्रार्थना करूँगा कि वह वापस आ जाय। मैं जा रहा हूँ······शायद मैं···

उसी समय कुछ कदमों की आहट सुनकर सुरेश पास की झाड़ी में खिसक जाता है और फिर कुछ समय बाद वह भगवान के मंदिर में डाक्टर की आत्मा के लिए शान्ति माँग रहा था।

वे रोमांचकारी दिन :
जिन्हें मैं विस्मृत नहीं कर सकता

—अनिल सिंह अष्टम 'ख'

[१९७१ के भारत पाक युद्ध के समय आगरा नगर घटित ये रोमांचकारी घटनायें जिनका प्रत्यक्ष दर्शी है यह बाल लेखक, जो उस समय अपने शैशव के पालने में हिलोरें ले रहा था। उसी के शब्दों में प्रस्तुत हैं कुछ घटनायें]

दिसम्बर ३, १९७१ रात्रि के लगभग ९ बज रहे थे। परिवार के सभी लोग भोजन कर वार्तालाप में व्यस्त थे। अचानक घर, मोहल्ले की बिजली गुल। कारण कोई समझ में नहीं आ रहा था। तभी रात्रि की निस्तब्धता को भंग करते हुये बोल उठे साइरन। रुक-रुक कर साइरन खबर दे रहे थे किसी संभावित खतरे की। चारों ओर घनघोर अँधेरा। साँय-साँय बहने वाली हवा वातावरण को गम्भीर बना रही थी। तभी गूँज उठता है एक स्वर ······धड़ाम···पुनः···धड़ाम।

किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक बिजली का जाना साइरनों का रुक-रुक कर बजना फिर धड़ाम–धड़ाम की आवाजें, आखिर है क्या? कुछ ने लगाया अनुमान भारतीय वायुसेना द्वारा बम विस्फोट से बचने के तरीके का एक प्रशिक्षण हो।

पर लोगों का निकला अनुमान गलत। यह विमान था पाकिस्तान का। उसने अचानक कर दिया था आक्रमण भारत पर। उसके विमान आ धमके थे आगरा पर। विमान भेदी तोप से गोलियों, मिसाइल्स का वर्षण उन विमानों पर। साफ बच निकले।

दुबारा पुनः आक्रमण। पुनः साफ बच निकलना। तीसरी बार आक्रमण का पुनः प्रयास, पर इस बार धराशायी पाकिस्तानी मिराज विमान। मिले उसके अवशेष मथुरा के पास यमुना नदी मे तैरते हुये।

इधर उसी समय ही पहुँचता हूँ ट्रांजिस्टर के स्विचों पर। ट्रांजिस्टर के माइक पर स्वर "यह आकाशवाणी" अशोक बाजपेयी से समाचार सुनिये।" पाकिस्तान द्वारा भारत पर आकस्मिक हमला। पाकिस्तानी जहाजों द्वारा आगरे पर बमबारी।" इसके उपरान्त प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का राष्ट्र के नाम प्रसारण।

दिसम्बर ४, १९७१ प्रातः ६·३० बजे का समय। तैयार था मैं विद्यालय जाने के लिये। पहला कदम बाहर ही रक्खा था कि वही कल रात जैसी दहलाने वाली धड़ाम की आवाज। खिड़कियाँ, दरवाजे हिल उठे। पुनः वही दन–दन की आवाज। रोक दिया माँ की ममता ने मुझे स्कूल जाने से।

अब बैठा देख रहा था घर की खिड़की से। निकलती रेलगाड़ियाँ खचा-खच भरी सेना के नौजवानों से। हाथ हिला-हिला, कर रहे थे अभिवादन और मूक वाणी से हमें बता रहे थे—"माता ने हमें पुकारा है,

जननी ने हमें पुकारा है।'' हम भी अपने घरों की खिड़कियों से हाथ हिला कर अपनी शुभेच्छा व्यक्त कर रहे थे, साथ ही उन्हें इस बात से आश्वत कर रहे थे— ''हम नन्हें मुन्ने हों चाहे पर नहीं किसी से कम।''

कौन जानता था साथ-साथ जाने वालों में से कौन-कौन वापस लौटेगा। पर हृदय में लिये एक उमंग, एक जोश बढ़ रहे थे वे मातृ वलिवेदी की ओर।

अब बीच-बीच में होने वाले धमाके जहाँ एक ओर अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग करते वहीं दूसरी ओर मन में एक नया जोश एवं उमंग भरते।

तभी घड़ी की आवाज टन-टन-टन-टन। गरगराहट की आवाज से गूँज उठा गगन। वायुयान की एक मालिका चली जा रही थी। कोई अनुमान भी न लग रहा था कि यह मालिका आखिर जा किधर रही है ? मस्तिष्क में विचार उठते-उठते गहन रात्रि का प्रादुर्भाव हुआ। निद्रा देवी ने अपने सलोने आँचल में मुझे थपकियाँ देते हुये भर लिया।

५ दिसम्बर का प्रभात। समाचार पत्र आया। देखा, पाकिस्तानी बमों से ध्वस्त घरों के चित्र। वहीं सुर्खियों में छपा भारतीय हवाबाजों की करांची, ढाका, इस्लामाबाद आदि स्थनों पर बमबारी। याद आती है कल की वायुयान मालिका। आगरे में किये गये तीन धमाकों का बदला परिपूर्ण। अतः मन को सन्तुष्टी। अब तो नित्य एक ही काम था, खिड़की में बैठ भारत माँ के मान बढ़ानें वाले मतवालों को हाथ हिला हिला कर विदा देना।

पृष्ठ ३० के प्रश्नों के उत्तर]

[1] 1200 रेलवे टिकट

[2] 2·30 घन्टे, 10·30 बजे

[3] 18446744073709551615

[4] 4 गाय, 3 भैंस 13 बकरी

[5] 5 बजने में 5 मिनट

[6] लेनिन ग्राद के पूर्व की ओर

[7] 8 लीटर वाले बर्तन में तेल भर कर उसमें से 3 लीटर वाले बर्तन से 3 लीटर तेल निकाल लेते हैं। बचे 5 लीटर को ड्रम में निकाल लेते हैं फिर 3 लीटर वाले बर्तन में 3 बार तेल लेकर 8 लीटर वाले बर्तन में डालते तो अन्त में 1 लीटर बच जाता है। उसे ड्रम में डाल देते हैं तो 6 लीटर तेल बच जाता है। इसी प्रकार फिर तीन बार 8 लीटर वाले बर्तन में डालते हैं। तो एक लीटर बच जाने वाले को ड्रम में डालने पर 7 लीटर तेल हो जायेगा।

बुद्धि परीक्षा

—संजय भरद्वाज 'अष्टम क'

(१) एक रेलवे टिकट वेचने वाला रेल के साथ-२ चलता है। उसकी लाइन में पच्चीस स्टेशन है। कोई भी यात्री गाड़ी के आते व जाते समय उस टिकट वाले से किसी भी स्टेशन से अन्य किसी भी स्टेशन का टिकट खरीद सकता है। अतः उसके पास कई प्रकार के रेलवे टिकट हैं, जिनकी गणना कीजिए।

(२) एक नगर की जनसंख्या ५०,००० है। वहाँ के एक व्यक्ति को ८ बजे एक रोचक घटना मालूम हुई। उसने १५ मिनट में वह सूचना तीन व्यक्तियों को दे दी। उन तीनों व्यक्तियों ने वह सूचना १५ मिनट में अन्य तीन-तीन को दे दी। जिसने एक बार तीन व्यक्तियों को सूचना दे दी वह दुबारा किसी को नहीं देगा। इस प्रकार पूरे नगर में वह बात फैलने में कितना समय लगेगा? उस समय कितना बजा होगा।

(३) एक शतरंज के प्रथम खाने पर एक, दूसरे खाने पर दो, तीसरे खाने पर चार व इसी प्रकार हर खाने में पिछले खाने का दुगना रखता गया। अन्त में चौसठों खानों की अंख्याओं का योग बताओ?

(४) एक ग्वाले के पास २० जानवर हैं। इनमें कुछ गाय, कुछ भैंस, कुछ बकरियाँ हैं। यदि एक गाय ३ लीटर, एक भैंस ५ लीटर, एक बकरी १ लीटर दूध देती है और कुल दूध ४० लीटर है तो गाय, भैंस, बकरी की अलग अलग संख्या बताओ।

(५) वह समय बताओ जब घड़ी में घंटे और मिनट की सुई सीधी रेखा के रूप में हो और जितने बजने वाले हो उतने मिनट शेष हों।

(६) एक वायुयान क्रमशः लेनिनग्राद से उत्तर की ओर ५०० कि. मी. पूर्व की ओर ५०० कि. मी. फिर दक्षिण की ओर ५०० कि. मी. और फिर पश्चिम की ओर ५०० किलोमीटर जाकर भूमि पर उतर गया। जहां पर वह उतरा वह लेनिन ग्राद था, या लेनिन ग्राद का पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी या दक्षिणी भाग?

(७) ३ लीटर व ८ लीटर के मापक द्वारा ड्रम से ठीक ७ लीटर तेल नापकर निकालने की विधि बताओ।

(उत्तर पृष्ठ २९ पर देखें)

किशोर-दीप

सैनिक मेरा नाम

[किशोर मन की भावुक तरंगों का राष्ट्र के कर्त्तव्य के रूप में एक पठनीय प्रयत्न········]

चाँद हूँ, सितारा हूँ, मैं जलता अंगारा हूँ,
अम्बर में मुस्काता हूँ, मैं दुश्मन को दहलाता हूँ।
सीना खोले चलता हूँ, मैं सैनिक मेरा नाम है,
मातृ-भूमि के कण-कण की रखवाली मेरा काम है॥

नन्हा-मुन्ना देखकर सीधा सादा सोच कर,
कोई आँख दिखाये ना सीमाओं पर आये ना।
मैं ऐसी चिनगारी हूँ, बारूदों को भड़का दूँगा,
मातृ-भूमि की रक्षा में, मैं अपना शीश चढ़ा दूँगा॥

अपना देश दुलारा है, हमको प्राणों से प्यारा है,
इसको सदा सवारूँगा, तन मन धन सब वारूँगा।
इसका कण-कण सोना है हरा भरा हर कोना है,
मैं हूँ इसका प्रहरी जिस पर न्योछावर ही होना है॥

मैं हर युग का निर्माता, मैं इसको स्वर्ग बनाऊँगा।
तिल तिल जल कर दीपक सा, मैं नव प्रकाश फैलाऊँगा।
इसकी गौरव गाथा को सम्पूर्ण विश्व में गाऊँगा,
विजय पताका इसकी मैं सारे जग में फहराऊँगा।

–आलोक गुप्ता नवम् 'क'

जयद्रथ-वध

(मैथिली शरण गुप्त)

—संजय श्रीवास्तव 'दशम क'

[हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन तत्र पार्थेन संयुगे ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ।]

[प्रस्तुत है किशोर लेखनी से निःसृत जयद्रथ वध का मर्मस्पर्शी अभिचित्रण]

आचार्यों ने काव्य के मुख्यतः दो भेद माने हैं—दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य । दृश्य-काव्य वह है जो अभिनय के माध्यम से देखा-सुना जाता है यथा-नाटक, रूपक आदि । श्रव्य-काव्य के दो भेद हैं—प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य । प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य और आख्यानक-गीतियाँ आती हैं । मुक्तक काव्य के भी दो भेद हैं—पाठ्य मुक्तक तथा गेय मुक्तक ।

चूँकि हमारा अभिप्रेत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध खण्डकाव्य ''जयद्रथ-वध'' का सारांश प्रस्तुत करना है अतः काव्य (श्रव्य) के भेद, खण्डकाव्य को ही समझते हुए हम जयद्रथ-वध खण्ड काव्य का सारांश प्रस्तुत करेंगे ।

साहित्याचार्यों के अनुसार खण्डकाव्य में जीवन के व्यापक चित्रण के स्थान पर उसके किसी एक पक्ष अथवा रूप का चित्रण होता है । पर खण्डकाव्य महाकाव्य का संक्षिप्त रूप अथवा सर्ग नहीं होता है । खण्डकाव्य में अपनी पूर्णता होती है । सम्पूर्ण रचना में प्रायः एक ही छन्द प्रयुक्त होता है ।

प्रस्तुत 'जयद्रथ-वध' खड़ी बोली में रचित, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक खण्डकाव्य है । 'महाभारत' की प्रसिद्ध घटना 'जयद्रथ का वध' का पूर्ण चित्रण इस खण्डकाव्य में किया गया है । यह खण्डकाव्य सात सर्गों में विभक्त है ।

यहाँ हम प्रस्तुत कथा, प्रत्येक सर्ग के अनुसार लिख रहे हैं ।

[प्रथम सर्ग]

'जयद्रथ-वध' की कथा महाभारत से अवतरित की गई है, जो प्रायः सर्वविदित भी है । महाभारत के युद्ध में एक दिन अकस्मात् द्रोणाचार्य के द्वारा कौरवों के पक्ष में चक्रव्यूह बनाया गया था, जो कि दुर्भेद्य था । पाण्डवों के पक्ष में अर्जुन ही वह समर्थ वीर थे जो चक्रव्यूह-भेदन कर सकते थे । उस समय उन पाण्डवों की चिन्ता को हरने के लिये किशोर अभिमन्यु प्रस्तुत हुआ और उसने अद्भुत साहस का प्रदर्शन करते हुए निम्नलिखित वचन कहे–

''हे तात! तजिये सोच को, है काम ही क्या क्लेश का ?
मैं द्वार उद्घाटित करूँगा, व्यूह-बीच प्रवेश का''

अपने सारथी द्वारा रण-भय दिखाए जाने पर अभिमन्यु अत्यंत उत्साह तथा साहस प्रदर्शित करते हुए कहता है–

''हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, देवेन्द्र भी आकर अड़ें,
हैं खेल क्षत्रिय-बालकों का व्यूह-भेदन कर लड़ें ।''
''मैं सत्य कहता हूँ सखे, सुकुमार मत जानो मुझे,
यमराज से भी मृत्यु में प्रस्तुत सदा मानो मुझे ।।

है और की तो बात क्या यह गर्व मैं करता नहीं,
मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं।"

इस प्रकार अभिमन्यु सुसज्जित होकर जब अपनी पत्नी 'उत्तरा' से विदा लेने पहुँचते हैं तो वह नववधू कहती है—

"क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही,
सज्जित करें पति पुत्र को रण के लिए जो आप ही।
जो वीर पति के कीर्ति-पथ में विघ्न-बाधा डालतीं,
होकर सती भी वह कहाँ कर्तव्य अपना पालती ?

किन्तु हृदय बोल ही उठता है, पत्नी - हृदय की आशंकाओं के लिए वह क्या करे।

"जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,
उठती बुरी हैं भावनाएँ हाय ! इस हृद्धाम में।"

तथा,

"हे उत्तरा के धन ! रहो तुम उत्तरा के पास ही ॥"

अभिमन्यु ने उसको मोहित होते देखा तो वह अत्यंत प्रीति से बोला—

"वीर - स्नुषा तुम वीर - रमणी वीर-गर्भा हो तथा,
आश्चर्य, जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा।"

इस प्रकार, बहुत उपायों से उत्तरा को शान्त करके सौभद्र युद्ध-भूमि में अवतरित हुए। व्यूह को तोड़ कर अभिमन्यु ने प्रचण्ड पराक्रम प्रदर्शित करते हुए कौरव - पक्ष के अनेक वीरों व सैनिकों को यमपुरी पहुँचा दिया। अहंमन्य वीर कर्ण को भी कहना ही पड़ा—

"आचार्य ! देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।"

तथा

"रघुवर विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इसमें व्यस्त है,
यह पार्थनन्दन पार्थ से भी धीर-वीर प्रशस्त है।"

कौरव-पक्ष के पापी, अन्यायी व दुष्ट महारथी जो अभिमन्यु से पृथक-पृथक किसी भी प्रकार पार न पा सके, वे येन-केन-प्रकारेण उसको मारने का उपाय सोचने लगे। फिर सात महारथियो ने एक साथ सौभद्र के ऊपर आक्रमण किया। सौभद्र ने साहस न खोते हुए उनका कड़ा प्रतिरोध किया किन्तु—

'जब एक साथ प्रहार-कर्त्ता हों चतुर्दश कर जहाँ,
युग कर कहो, क्या-क्या यथावत कर सकें विक्रम वहाँ?'

अभिमन्यु शस्त्ररहित हो जाता है; किन्तु कौरव-पक्ष, रण-नियम से विमुख होकर अभिमन्यु की हत्या कर देता है। मृत्यु से पूर्व अभिमन्यु गुरू द्रोणाचार्य से कहता है—

"आचार्य ! तुम आचार्य हो,
बलवीर-विद्या-विज्ञ मेरे तात शिक्षक आर्य हो।
फिर आज इनके साथ तुमसे हो रहा जो कर्म है,
मैं पूछता हूँ, वीर का रण में यही क्या धर्म है ?"

द्रोणाचार्य मौन हो जाते हैं; किन्तु दुर्योधन के भय से पुनः सभी महारथी उस निहत्थे किशोर को मार डालते हैं।

जब सौभद्र भूमि पर गिर पड़ता है तो दुःशील दुःशासन ने एक और नीच कर्म किया। उसने सौभद्र के सिर पर गदा मार दी।

कवि अभिमन्यु की मृत्यु पर संवेदना प्रकट करता है।

"हे वीरवर अभिमन्यु ! अब तुम हो यदपि सुरलोक में,
पर अन्त तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक में,
दिन-दिन तुम्हारी कीर्ति का विस्तार होगा विश्व में,
तव शत्रुओं के नाम पर धिक्कार होगा विश्व में।"

[द्वितीय–सर्ग]

अभिमन्यु की मृत्यु पर पाण्डव-पक्ष स्तब्ध रह गया और सब संबंधी, स्नेही-जन शोकाकुल हो शोकोद्गार व्यक्त करने लगे।

पत्नी उत्तरा की दशा दयनीय हो गई क्योंकि पति-वियोग सबसे बड़ा वियोग होता है। उत्तरा विलाप-प्रलाप करती हुई कहती है—

"हा आज उस मुझ किंकरी को कौन से अपराध में,
हे नाथ तजते हो यहाँ तुम शोक-सिन्धु अगाध में।"

× × × ×

रोका बहुत था हाय ! मैंने जाइए मत युद्ध में,
माना न तुमने किन्तु कुछ भी निज विपक्ष विरुद्ध में।"

धीरों में धुरन्धर समझे जाने वाले, युधिष्ठिर, जिनको किसी ने कभी विचलित नहीं होते देखा था, वह भी इस शोक में रोने लगे। अभिमन्यु के लिए वे कहते हैं—

"जितना हमारे चित्त को आनन्द तुमने था दिया,
हा अधिक उससे भी उसे अब शोक से व्याकुल किया।"

× × ×

"सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया,
फल योग्य ही हे पुत्र ! उसका शीघ्र हमने पा लिया।"

ज्येष्ठ पाण्डव को भी शोकाकुल देख कर व्यास मुनि युधिष्ठिर को धैर्य बँधाने आए। युधिष्ठिर को सान्त्वना देते-देते महामुनि स्वयं द्रवित हो जाते हैं—

"सच जानिये यह अब न होगा हृदय लीन उमंग में,
सुख की सभी बातें गईं सौभद्र के ही संग में।"

उधर अर्जुन घनघोर युद्ध करके लौटे। कृष्णार्जुन को देखकर युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा—

"हे, हे जनार्दन ! आपने यह क्या दिखाया है हमें ?
हे देव ! किस दुर्भाग्य से यह दुःख आया है हमें ?"

सम्पूर्ण समाचार सुनकर कठोर बाणों को सहने वाले अर्जुन पृथ्वी पर इस शोकाघात से गिर पड़े। कृष्ण भी शोकाकुल हो गये।

अंत में कवि निष्कर्ष निकालता है—

"होती अतीव अपार है सुत-शोक की दुस्सह व्यथा।"

[तृतीय सर्ग]

परम योगेश्वर भगवान कृष्ण अर्जुन सहित पाण्डवों को प्रज्ञायुक्त वचनों से समझाने लगे। पाण्डवों को भली प्रकार धैर्य देकर श्रीकृष्ण अर्जुन के अन्दर प्रतिशोध की भावना जगाने के प्रयास में लग गए—

"वह वीर ही क्या शत्रु का सुख है स्वयं जो आप ही,
निज शत्रु का हरदम बढ़ाना चाहिये सन्ताप ही।"

× × ×

"हे वीरवर ! इस पाप का फल क्या उन्हें दोगे नहीं ?
इस वैर का बदला कहो क्या शीघ्र तुम लोगे नहीं ?"

इस प्रकार की लगातार उत्तेजक बातों को सुनकर अर्जुन ने अति क्रोधावेश में अत्यंत रोमांचक प्रतिज्ञा की।

"सुर, नर, असुर, गन्धर्व, किन्नर आदि कोई भी कहीं,
कल शाम तक मुझ से जयद्रथ को बचा सकते नहीं।"

× × ×

अतएव कल उस नीच को रण-मध्य जो मारूँ न मैं,
तो सत्य कहता हूँ कभी शस्त्रास्त्र फिर धारूँ न मैं॥
हे देव अच्युत, आपके सम्मुख प्रतिज्ञा है यही,
बध कल जयद्रथ का करूँगा बचन कहता हूँ सही।

पार्थ के क्रोध व आवेश की पराकाष्ठा निम्नांकित पंक्तियों में देखिए—

"अथवा अधिक कहना वृथा है, पार्थ का प्रण है यही,
साक्षी रहें सुन ये वचन रवि, शशि, अनल, अम्बर, मही।
सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ-वध करूँ,
तो शपथ करता हूँ स्वयं ही अनल में मैं जल मरूँ।"

अर्जुन की यह असाधारण प्रतिज्ञा शीघ्र ही कौरव-पक्ष में प्रसारित हो गयी। जयद्रथ को यह समाचार भयाक्रान्त कर गया। अर्जुन की क्रोधाग्नि से उसको अपनी मृत्यु स्पष्ट प्रतीत होने लगी। अत्यंत घबरा कर वह कौरवाधीश दुर्योधन के पास जाकर उससे अपनी रक्षा के उपाय पूछने लगा। गर्वोन्मत्त दुर्योधन अपने को समर्थ जा कर जयद्रथ को धैर्य बँधाने लगा कि तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा अपितु अर्जुन स्वयं ही जल मरेगा।

इस ओर पाण्डवों को शान्तिदायी सान्त्वना देकर श्रीकृष्ण ने सौभद्र की दाह-संस्कार की तैयारियाँ करवाईं। उसका दाह-संस्कार भी करवाया। उत्तरा गर्भिणी थी इसलिए वह पति के साथ सती नहीं हो सकी।

[चतुर्थ सर्ग]

अभिमन्यु के दाह-संस्कार के बाद पुनः युद्ध प्रारम्भ हुआ, तो हरि ने अर्जुन की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने अर्जुन से भय दिखाते हुये कहा—

"अत्यंत रोषावेग में तुमने किया है प्रण कड़ा,
अब यत्न क्या इसका सखे? यह कार्य है दुष्कर बड़ा।"

हरि की बात सुनकर अर्जुन ने वीरत्व, करुणा और शान्ति से आप्लावित ये वचन कहे—

"निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे,
हे देव! मेरे यत्न तुम हो मत दिखाओ भय मुझे।"

हरि यही तो चाहते थे। अर्जुन को दृढ़ देखकर उन्होंने अर्जुन की सहायता के लिये उसको दिव्यास्त्र दिलवाने का निश्चय किया। अतः कृष्ण,

"कर योगमाया को सजग निद्रित जगत की व्याप्ति को,
झट ले चले वे पार्थ को शिव निकट अस्त्र-प्राप्ति को।"

मार्ग में अर्जुन ने, बैकुंठ में रमापति भगवान विष्णु को तथा अभिमन्यु को निज-सामीप्य' देते देखा। अर्जुन पुनः पुत्र को देख कर शोक से युक्त हो गए। इसके बाद कृष्णार्जुन शिव जी के पास पहुँचे। अर्जुन ने शिव का वन्दन किया। कृष्ण ने भी शिव जी की वन्दना की। शिव जी ने पार्थ को आशीर्वाद देकर हरि की वन्दना की। तत्पश्चात् हरि के संकेत पर हर (शिव जी) ने अपने अस्त्र अर्जुन को दे दिये। सबेरा होने के पूर्व ही कृष्णार्जुन पुनः शिविर में लौट आए।

युधिष्ठिर ने पार्थ से रात्रि का अद्भुत समाचार सुना तो चमत्कृत रह गये और उन्होंने कृष्ण जी की वन्दना की तथा स्वयं सहित पाण्डवों को उनकी शरण में सौंप दिया। इस प्रकार कृष्ण-सहित वे सब पाण्डव द्विगुणोत्साह से युद्ध में संलग्न हुए।

[पञ्चम सर्ग]

जयद्रथ को सेना के मध्य छिपाकर, कौरवों को समझाकर, मुख्य द्वार पर खड़े द्रोण को अर्जुन ने देखा। उन 'सुत-घाती' गुरु को देखकर अर्जुन क्रोध में भर गए और बोले—

"आचार्य मेरा हस्त-कौशल देख लेना फिर कभी,
अभिमन्यु का बदला तुम्हें लेकर दिखाना है अभी।"

इसके बाद कौरव-चमू का संहार करते-करते अर्जुन ने घोर युद्ध किया। अर्जुन को प्रलयंकारी स्वरूप ग्रहण करते देख दुर्योधन ने स्वपक्ष-रक्षा का उपाय द्रोण से पूछा। तब द्रोण ने उसे अपना अभेद्य, दिव्य कवच पहना कर उसका शोक दूर किया। इधर कौरवों के सैन्य सागर में अर्जुन को विलीन होते देख युधिष्ठिर चिंतित हुए और उन्होंने क्रमशः सात्यकि और भीम को अर्जुन का समाचार लेने भेजा, जिन्होंने अत्यन्त कुशलता से गुरु और भाई के लिये चक्रव्यूह में प्रवेश किया, और घोर युद्ध में जुट गये।

[षष्ठ सर्ग]

सात्यकि, भूरिश्रवा से भिड़ा था। भूरिश्रवा भी एक

वीर राजा था। सात्यकि अत्यंत थक गए थे। तभी भूरिश्रवा ने अपने खड्ग से सात्यकि का सिर काट लेना चाहा। किन्तु तत्क्षण अर्जुन ने भूरिश्रवा के खड्गयुक्त हाथ को बाण से काट कर अपने प्रिय शिष्य की रक्षा की। शत्रु-पक्ष ने अर्जुन के इस कृत्य को अनुचित बताया तो अर्जुन बोले कि 'निज जनों का त्राण' धर्मसंगत है। इसके बाद अर्जुन ने उन लोगों को धिक्कारते हुए कहा—

"तुम सात ने जब वध किया था एक बालक का यहाँ,
रे पामरों। तब यह तुम्हारा धर्म सारा था कहाँ ?"

बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् जब अर्जुन ने सूर्यास्त होते देखा तो प्रतिज्ञा से असफल रहने के कारण गाण्डीव रथ में रख कर रण-विमुख हुए। अर्जुन का अंत निकट जान कर शत्रु-पक्ष सुखी हो गया, दुर्योधन जयद्रथ से बोला—

"हे वीर ! रण में अब नहीं तुम घूमते स्वच्छंद क्यों ?
अब सूर्य के सम पार्थ को भी अस्त होते देख लो।"

समस्त पाण्डव पक्ष पुनः शोक संतप्त हो गया। अर्जुन ने कृष्ण के रहते हुए भी प्रण पूरा न हुआ देखकर कहा कि वे दूसरा प्रण भी अपूर्ण न रहने देंगे। अतः वे शीघ्र जल मरेंगे। जयद्रथ ने तभी विषाक्त वचन कहे—

'गोविंद अब क्या देर है प्रण का समय जाता टला,
शुभ कार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतना ही भला।"

यह सुन कर कृष्ण बोले—

"हे पार्थ ! प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है।"

श्री कृष्ण के इन वचनों के साथ ही सूर्य आकाश में पुनः चमकता सा दिखाई देने लगा, जो कृष्ण जी ने दिन शेष रहते ही छिपा दिया था।

अर्जुन ने तत्काल धनुष-बाण ग्रहण करके जयद्रथ को ललकारा। जयद्रथ को बचाने के लिए कर्णादि वीरों ने प्राण–पण से प्रयास किया, किन्तु अर्जुन ने उसका सिर शेष शरीर से पृथक कर दिया और अर्जुन का बाण (पाशुपतास्य) उसका सिर वायु में उड़ाता हुआ, उसके तप–रत पिता की गोद में डाल आया और हरि की इच्छा से पुत्र के साथ पिता भी मरा [जयद्रथ के पिता ने घोर तपस्या की और वर प्राप्त किया कि जिसके द्वारा 'मेरे पुत्र का सिर पृथ्वी पर गिरे उसका सिर भी तत्क्षण सौ टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। पाशुपत्त के प्रभाव से जयद्रथ का सिर उन्हीं की गोद में गिर पड़ा, फलतः वे भी मर गए।]

[सप्तम सर्ग]

इस प्रकार जयद्रथ-वध हुआ और पाण्डवों को कुछ शान्ति मिली। इसके बाद सब पाण्डवों सहित युधिष्ठिर ने कृष्ण की अर्चना की। युधिष्ठिर ने कृष्ण के चरणों का स्पर्श किया एवं हरि ने युधिष्ठिर का शुभालिंगन किया।

कवि का खण्ड काव्य यहीं समाप्त होता है क्योंकि कवि कहता है—

"दुख दुःशलादिक का अभी कहना यदपि अवशिष्ट है,
पर पाठकों का जी दुखाना अब न हमको इष्ट है।"

तुलसी और समन्वय-भावना

नवनीत कुमार (दशम 'क')

[कवि श्रेष्ठ गोस्वामी तुलसीदास जी का एक यथार्थ और सर्वथा अभिनव मूल्यांकन सामाजिक उपादेयता की कसौटी पर—]

गोस्वामी तुलसीदास जी का आविर्भाव हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता के ऐसे संक्रमणकाल में हुआ था, जब कि जीवन की वास्तविक प्रेरणा परस्पर विरोधी विचार-धाराओं के टकराव के कारण पूर्णतया विस्मृत हो चुकी थी। लोग सत्यान्वेषण में भी असत्य को ही सत्य मानने लगे थे। धार्मिक क्षेत्र, जो हिन्दू जाति की प्रायः सभी शक्तियों तथा प्रवृत्तियों का परिचायक है और जो प्रत्येक हिन्दू पर बड़ी गहराई तक प्रभाव डालता है, वह भी निर्गुण तथा सगुण एवं शैव तथा वैष्णव के पारस्परिक घात-प्रतिघातों से भ्रान्ति और अशान्ति का साम्राज्य बन गया था। धर्म का स्वरूप मठाधीशों के तथाकथित धार्मिक स्थलों में उत्तरोत्तर घृणित तथा विकृत होता जा रहा था। पारस्परिक विद्वेष इतना व्यापक रूप ले चुका था कि धर्म के नाम पर सिरफोड़ौवल साधारण सी बात हो गई थी। सती-प्रथा, बाल विवाह आदि कुरीतियाँ समाज को पंगु बनाती जा रही थीं। इतना सब होने पर भी यवनों का दमनवादी साम्राज्य भी अत्याचारों के अन्धकूप में उतर आया था। साधारण प्रजा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई थी। उसको कोई सुस्पष्ट, सुपरिभाषित पथ नहीं प्राप्त हो रहा था, जिस पर चल कर वह जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त कर सकती। साहित्य-कारों का समाज भी विसंगतियों और विशृंखलताओं से नहीं बच सका था। कबीर की खण्डनात्मक प्रवृत्ति और कृष्णभक्त कवियों की आत्यन्तिक प्रवृत्ति भी समाज को स्पष्ट दिशाबोध प्रदान करने में स्वयं को असमर्थ पा रही थी।

ऐसे ही पतनोन्मुख समय में कविश्रेष्ठ तुलसी ने समाज में व्याप्त दुर्व्यवस्थाओं और समस्याओं का गहन अध्ययन किया, उसकी विषमताओं और विसंगतियों को सम्यकरूपेण पहचाना। इन्हीं सब को देख-परख कर उन्होंने ऐसा काव्य सिरजने का सफल प्रयास किया, जो पराजित जाति के मन में आशा और विश्वास का सचार कर सके, उनकी नसों में उत्साह का नवीन रक्त भर सके और उसे सफलता के आश्वासन के साथ आदर्श की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी दे सके। इसके अतिरिक्त आपसी भेद-भाव, वैमनस्य तथा दोषारोपण को भुलाकर बिखरी हुयी शक्तियों के संगठन तथा संयोजन का महत् अनुष्ठान तुलसी द्वारा सम्पन्न हुआ।

तुलसी, कबीर जैसी खण्डनात्मक प्रवृत्ति को अपने साहित्य में प्रश्रय देना नहीं चाहते थे, क्योंकि उनके मत से खण्डनात्मक प्रवृत्ति तत्कालीन विसंगतियुक्त परिस्थि-तियों को सुबद्धता प्रदान नहीं कर सकती थी। 'तुलसी की इस विचारधारा में भारतीय संस्कृति का स्वर मुखरित है', यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकना है कि भारतीय सभ्यता पाषाण-युग से लेकर आधुनिक अन्तरिक्ष-युग तक में समन्वय का पथ अन्वेषित करती रही है। तुलसी भारतीय संस्कृति के ज्वलन्त प्रतीक थे

और इसी कारण भारतीय संस्कृति की प्रवृत्तियों और विशेषताओं का गायक होना उनके लिए स्वाभाविक था।

पारस्परिक विश्वास तथा ऐक्य की अनुभूति ही जीवन का वास्तविक आनन्द है—यह तुलसी-साहित्य का महान् सन्देश है। अपने लम्बे जीवन में तुलसी समाज को प्रायः प्रत्येक समस्या तथा समूह विशेष के घनिष्ठ सम्पर्क में आये थे। जहाँ जीवन के ऊषाकाल में उन्होंने सर्वहारा-दरिद्रनारायण का साक्षात्कार किया था, वहीं युवावस्था तथा गार्हस्थ्य में शिक्षा-व्यवस्था की टूटती रीढ़ एव राज दरबारों की विलासिता का भी अवलोकन किया था। अतएव तुलसी प्रत्येक समस्या को हर सम्भव दृष्टि कोण से देखते चले हैं और समाज को प्रभावित-स्पन्दित करना उनका सहज-साध्य बन गया है।

अपनी इन्हीं सब मान्यताओं के बीच तुलसी महान समन्वयकारी रुप में हमारे समक्ष आते हैं। या हम यों भी कह सकते हैं कि यदि तुलसी काव्य की उन अन्य सभी विशेषताओं को एकबारगी भुला भी दिया जाय, जिसके कारण उनको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया गया है, तब भी अपनी अपूर्व समन्वयशीलता तथा संयोजन-सामर्थ्य के कारण तुलसी का गौरव सदा अक्षुण्ण रहेगा।

तुलसी ने समाज में जिस किसी क्षेत्र में असंगति के दर्शन किये, पारस्परिक विचारों का टकराव अनुभव किया तथा पक्ष- विपक्ष का अस्तित्व देखा, वहीं उन्होंने दोनों पक्षों के विचारों और तर्कों के मध्य एक संतुलन-बिन्दु अन्वेषित करने का सफल प्रयास किया और सामंजस्य स्थापित करने के इस प्रयास में जो सर्वतोमुखी भावना सर्वत्र विद्यमान थी, वह थी समाज हित की भावना।

तुलसी ने सर्वाधिक प्रभावकारी समन्वय अपने साध्य के चरित्रांकन में किया है। तुलसी के समय की प्रजा केवल सौन्दर्य एवं शील ही नहीं चाहती थी, वह पापों तथा दुष्टों का मर्दन करने वाली असीमित शक्ति की भी उपासना करना चाहती थी। तुलसी ने जन मानस की इसी अभिलाषा को ध्यान में रखकर राम का चित्रण किया है। उनके राम सौन्दर्य-शील-शक्ति के समन्वित रूप तथा कृष्णभक्त कवियों के आराध्य कृष्ण से सर्वथा भिन्न हैं। तत्कालीन कवियों ने कृष्ण का जो रूप मानव कल्याण के लिये निर्धारित किया था, उसमें मान-वीय तत्व निस्संदेह राम से अधिक हैं, किन्तु वह रूप अतिवादों से ग्रस्त था, और उसकी परिणति भी आत्म-निषेध तथा अन्तर्विरोध के रूप में हुई। कृष्ण को एका-धिक बार अपनी खींची रेखाओं को अपने ही पैरों पर चलकर मिटाना पड़ा था। अपने परिजनों की अबाध उच्छृंखलता तथा अशिष्टता के प्रति उन्हें स्वयं शस्त्र उठाना पड़ा था। राम चरित्र इस दृष्टि से कहीं अधिक प्रभावकारी तथा मर्यादित है। इस चरित्र में समाजोत्थान तथा नैतिकता की स्थापना के लिये निस्संदेह अधिक अवकाश है। इसी कारण तुलसी को यह अपने आदर्शों के अनुकूल जँचा।

तुलसी के समन्वय का द्वितीय चरण निर्गुण-सगुण तथा शैव-वैष्णव आदि धार्मिक सम्प्रदायों के संयोजन में दृष्टिगोचर होता है। तत्कालिक सन्त कवियों ने अपना आराध्य इतना सूक्ष्म तथा दुस्साध्य बना दिया था, (निरगुण सगुण से परे तहाँ हमारो ध्यान— कबीर) कि साधारण जनों के लिये उसकी अनुभूति तो क्या बोध भी असम्भव-सा हो गया था। दूसरी ओर कृष्णाश्रयी शाखा के कवियों की मनोरम कल्पनायें एवं श्रृंगारिकता भी समाज को स्थायी सुख तथा मार्गदर्शन न दे सकी, यद्यपि उनके गीतों ने कुछ समय के लिये विदीर्ण-जन-हृदय को स्पन्दित अवश्य किया था। किन्तु तुलसी ने राम का चरित्र चुना और उसका भी उन्होंने केवल परिमार्जित स्वरूप ही प्रस्तुत किया। लव-कुश काण्ड, सीता-त्याग इत्यादि प्रसंग इसी कारण उनके 'मानस' में त्याग दिये गये हैं। मर्यादा की लीक से तुलसी कभी विचलित नहीं हुए हैं। अपने सिद्धाँतों और मान्यताओं का किन्च-मात्र भी अतिक्रमण उनको असह्य था। इसी कारण निर्गुण तथा सगुण दोनों की उपादेयता को उन्होंने

चित्रित किया है। यद्यपि समाज हित को सर्वोपरि मानने के कारण उनकी दृष्टि पुनः पुनः सगुण-मार्ग को देखने का ही प्रयास करती रही है। वैसे तो उनका सम्पूर्ण साहित्य इसी भावना व प्रवृत्ति से परिपूर्ण रहा हैं, किन्तु 'मानस' में यह अपने सर्वाधिक परिष्कृत रूप में है। 'मानस' में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उद्घोष किया है–

अगुनहि सगुनहि कछु नहि भेदा।
गावहि मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

सगुण-निर्गुण के समन्वय का दूसरा रूप तुलसी ने 'मानस' के 'उत्तर काण्ड' में प्रस्तुत किया है। इसमें तुलसी ने 'सगुण' की भक्ति तथा 'निर्गुण' के ज्ञान मे जो अपूर्व सामन्जम्य स्थापित किया है, वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक अनन्यतम उपलब्धि है। काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद के रूप में ज्ञान-भक्ति का निरूपण अनेक ऐसे रूपकों के माध्यम से हुआ है, जिनसे दोनों की उपादेयता स्पष्ट हो जाती है। तुलसी ने ज्ञान क महत्व भी स्वीकारा है, किन्तु उसके दुस्साध्य मार्ग को वे भक्ति के सहज-साध्य-मार्ग से उच्चतर मानने में हमेशा हिचकिचाये हैं :–

जे असि भगति जानि परिहरहीं।
केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी।
खोजत आक फिरहिं पय लागी॥

–किन्तु जब वे समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं तब वे घोषणा करते हैं कि–

ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं,भगति मधुरता जाहिं।

इसी प्रकार राम से शिव की तथा शिव से राम की पूजा कराकर उन्होंने शैव तथा वैष्णवों का वैमनस्य भी दूर करने का प्रयास किया। उनके इस स न्वय में शैव-वैष्णवों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध अनायास ही बन जाता है। देखिये राम किस प्रकार शिवपूजक को अपने आराधक से विलग मानने से इन्कार करते हैं–

संकर-प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही ममदास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास।१।

राम शिवद्रोही को अपना भक्त नहीं मान सकते हैं:–

शिव द्रोही मम दास कहावा,
सो नर मोहिं सपनेहुँ नहिं भावा।१।

रामभक्ति को 'दोहावली' में वे इस प्रकार परिभाषित करते हैं :—

घर कीन्हें घर जात हैं, घर छाड़ें घर जाइ।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेम पुर छाइ।२।

अर्थात् 'घर करने (गृहस्थी बसाने) से अपना वास्तविक घर (परलोक) नष्ट हो जाता है, और घर छोड़ने (सन्यासी होने) से गृहस्थी जाती है। अतः तुम घर और वन दोनों के बीच अपने राम के प्रेम की नगरी बसाओ।' जीवन में किस सीमा तक भोग अपेक्षित है और कहाँ से त्याग का देश प्रारम्भ होता है, यह एक ऐसा जटिल प्रश्न है जो युगों से विचारकों की बुद्धि को भरमाता आया है। तुलसी ने एकांगी जीवनादर्शों का खण्डन कर रामभक्ति के आधार पर इसी सन्तुलन को प्राप्त करने का प्रयास किया और इस कार्य में उन्हें असाधारण सफलता भी प्राप्त हुई।

अपने 'रामचरितमानस' में तुलसी ने हनुमान को अनिवार्य भूमिका के रूप में उपस्थित किया है। ऐसा कर उन्होंने न केवल शैव-वैष्णवों तथा आर्य-अनार्यों के द्वन्द्व का परिहार करने का प्रयास किया, प्रत्युत रामभक्ति की गरिमा भी बढ़ा दी, क्योंकि हनुमान को शिव जी का अवतार भी माना जाता है। वैसे तो, जैसा ऊपर कहा ही जा चुका है कि राम का चरित्र वीरता और विनय, त्याग और भोग, तथा प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य एक सन्तुलन बिन्दु है, परन्तु शिव (अनासक्ति) तथा हनुमान (शारीरिक शक्ति) के योग से उसकी व्याप्ति और आदर्श और भी अधिक व्यापक हो जाते हैं। इस प्रकार तुलसी ने शारीरिक शक्ति तथा अनासक्ति दोनों का सहभाव मनुष्य-जीवन में उपादेय और अनिवार्य माना है। यह भी तुलसी की समन्वय दृष्टि की व्यापकता का एक प्रमाण है।

तुलसी ने राम में ईश्वरत्व और मानवत्व का भी समन्वय किया है। राम ऐसे अलौकिक पुरुष नहीं हैं, जिनके चरित्र का संस्पर्श भी हम मानवों के लिए कल्पना की बात हो। वे हमारे जैसे मानव हैं, जो हाड़-माँस के पुतले अवश्य हैं किन्तु जो अपने मानवीय गुणों के कारण अतिमानव का पद प्राप्त कर सके हैं। राम अपने भाई लक्ष्मण की संभावित मृत्यु पर विलाप करते हैं और मानव स्वभाव की स्वाभाविकता से बच नहीं पाते—

जौ जनतेहु बन बन्धु बिछोहू।
पिता बचन मनतेहु नहिं ओहू।।
जथा पंख बिनु खग अति दीना।
मनि बिनु फनि करिवर करहीना।।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही।
जो जड़ दैव जिआवै मोही।।
जैहहुँ अवध कौन मुँह लाई।
नारि हेतु प्रिय भाय गँवाई।।

यद्यपि राम को तुलसी ने भक्त होने के कारण अति-मानव या मानवेतर रूप में ही प्रायः देखा है किन्तु उनकी दृष्टि से यह तथ्य कभी भी ओझल नहीं हो पाया है कि राम मानव-भूमि में अवतरित हैं। इसी मान्यता के कारण तुलसी भ्रमित जन मानस का पथ आलोकित कर सके हैं।

तुलसी साहित्य के पात्रों का चरित्रांकन कुछ इस प्रकार हुआ है कि उसमें अस्पृश्यता-उन्मूलन की बलवती प्रेरणा भी देखी जा सकती है। उनके साध्य राम नीच जाति केवट तथा शबरी को भी अपनाते हैं। उच्चवर्ग व निम्नवर्ग के साथ जैसा समीचीन समन्वय तुलसी ने अपने साहित्य के विभिन्न स्थलों पर किया है, उससे नैतिकता तथा मानवीय अधिकारों के प्रति उनकी जागरूकता स्पष्ट हो जाती है। देखिये वशिष्ठ राम के सान्निध्य को प्राप्त करने वाले निषाद को कैसे प्रेम के साथ गले लगा लेते हैं—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू।
कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुढक सनेह समेटा।।

रामराज्य की संकल्पना भी तुलसी की समन्वयात्मक बुद्धि की परिचायिका है। इसमें तुलसी ने एकतंत्र तथा प्रजातन्त्र का अपूर्व समन्वय किया है। कहाँ तक जनता के अधिकारों की मर्यादा है और कहाँ तक राजा के अधिकार प्रसरित है इन सबका समन्वित रूप रामराज्य है। एकतंत्र भी प्रजातन्त्र को स्थायी रख सकता है और इस परिस्थिति में शासन अधिक सुचारु रूप से चल सकता है; यह तुलसी ने सफलतापूर्वक इंगित किया है। राजतन्त्र के प्रतिनिधि राम भी प्रजा को सचेत रह कर दोषों की ओर संकेत करने का आदेश देते हैं—

जौ अनीति कछु भाखौं भाई।
तौ बरजेहु मोहि भय बिसराई।।

कुल मिला कर ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी-नाम किसी कवि विशेष का न होकर किसी विराट् सांस्कृतिक आन्दोलन का हो, समस्त उत्तरी भारत के जीवन मूल्यों को परिवर्तित कर देना जिसका लक्ष्य रहा हो और जिसने समाज की टूटी श्रृंखलाओं को एकबारगी पुनः संकलित करने का सफल प्रयास किया हो। इसी कारण 'निराला' जी ने उनके लिये श्रद्धापूर्वक कहा है :—

देश—काल के शर से बिंधकर,
यह जागा कवि अशेष छविधर।
इसका स्वर भर भारती मुखर होवेंगी,
निश्चेतन निज—मन मिला विकल।

प्रेरणा-पुंज पंडित जी के जन्म-दिवस पर–

सम्मान्य अतिथियों एवं अभ्यागतों के समक्ष आभार-प्रकट करते हुये विद्यालय-प्रबन्ध-समिति के मन्त्री
श्रीमान् वीरेन्द्र पराक्रम आदित्य जी

प्रेरणा–पुन्ज पंडित जी के जन्म–दिवस पर–

(बायें से दायें)—श्री शिवशरण जी शर्मा उपाध्यक्ष (प्रबन्ध समिति), श्री माधव जी देशमुख, प्रदेश संगठन - मन्त्री (विश्व हिन्दू परिषद), श्री बैरिस्टर नरेन्द्रजीत सिंह अध्यक्ष (प्रबन्ध-समिति), श्री जगदीश प्रसाद माथुर (संसद सदस्य)

—'आँसू'—

गीतिकाव्य की कसौटी पर

—आदित्य नारायण अग्निहोत्री, दशम 'क'

[एक अति गम्भीर समीक्षा एक अति सहज लेखनी से]

आँसू की बाह्य पृष्ठ भूमि देखने पर ऐसा विदित होता है कि पुस्तक 'आँसू' क्या कवि का ही स्नेह-स्निग्ध तरल तो नहीं है ?

आँसू ने मानव मन की सुकोमल भावनाओं एवं लालसाओं को स्मृति-पटल पर ले जाकर जगत के नेत्रों को तरलित कर दिया है। चिर-संचित-वेदना अपना व्यथा-भार असहनीय हो जाने से पृथ्वी तल पर आकर फूट पड़ी, जिसके परिणाम स्वरूप स्नेह-स्निग्ध तरल जगत की आभा से मण्डित होकर इस संसार के समक्ष प्रस्तुत हुआ। वेदनाओं की धाराएँ जब हृदय में हिलोरे लेने लगती हैं, जब स्मृति पटल पर अंकित वस्तु-विशेष और स्थूल-सत्य से अन्तर दिखता है तो कवि चकित हो जाता है, वेदना पिघलती है और नयन मार्ग से बरस पड़ती है। और इसीलिये प्रसाद के शब्दों में—

जो घनीभूत पीड़ा थी,
मस्तक में स्मृति सी छायी,
दुर्दिन में आँसू बनकर,
वह आज बरसने आयी।

कवि इन स्निग्ध बिन्दुओं को संसार की कुत्सित एवं कलुषित आत्मा से अछूता एवं असम्पृक्त रखना चाहता था किन्तु झंझाओं की तीव्रता, बाह्य संसार की शून्यता एवं दुःख देख कर विचलित होता है और बहुत रोकने पर भी एक बूंद झर ही जाता है।

रोना हो तो चुपके-चुपके,
आँसू न बहे आवाज न हो,

जब यह देखता है कि शून्यता की घनघोर घटायें, कर्महीनता की पराकाष्ठा पर हैं तो कवि माफी माँग लेना ही श्रेयस्कर समझता है।

सुनकर तुम क्या भला करोगे,
मेरी भोली आत्मकथा।
अभी समय भी नहीं, थकी,
सोयी है मेरी मौन व्यथा॥

यदि काव्य के सौख्य को पाने का आधार गीतिकाव्य माना जाए तो आँसू एक उत्कृष्ट गीतिकाव्य है, जिसके जोड़ की अन्य काव्य-कृति मिलना कठिन है।

आचार्यों ने गीतिकाव्य को चार तत्वों के अन्तर्गत अनुस्यूत कर दिया है। प्रथम है–भावना की अन्विति, द्वितीय है–वैयक्तिकता, तृतीय है–संगीतात्मकता और चतुर्थ है–संक्षिप्तता।

भावात्मकता की दृष्टि से यह कृति फूलों से गुथा हुआ हार है। यहाँ पर कवि के अन्तस्तल में एक कसक है, जिसकी वास्तविक अनुभूति पाठक के हृदय को विभेदित एवं विदीर्ण कर देती है।

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना ही जाना,
भीगी पलकों का लगना ।

यदि आँसू के सम्पूर्ण विषय को दृष्टिगत किया जाए तो भावनाओं की तरंगें हृदय में हिलोरे लेने लगती हैं और कवि की आँखों का एक बिंदु पाठक को बार-बार अपने पास बुलाता है।

देखिए! कवि जीवन-संघर्षों से कितना अटूट सम्बन्ध रखता है, उनकी कामना करता है और समुद्र के भवँरों में आनन्द की सृष्टि करता है—

मानव जीवन की वेदी पर,
परिणय हो विरह मिलन का,
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे,
है खेल आँख का मन का ।।

कवि के अन्तराल में कितना उथल-पुथल का भाव भरा है यद्यपि वह अपनी वेदना को किसी के समक्ष प्रस्तुत नहीं करना चाहता, किन्तु उसके हृदय से अशेष वाणी फूट पड़ती है।

उच्छ्वास और आँसू में,
विश्राम थका सोता है,
रोई आँखों में निद्रा
बन कर सपना होता है।

इतना हीं नहीं जब उसे अतीत और वर्तमान में बड़ा गहन अन्तर प्रतीत होता है तो उसके शून्य हृदय में झंझायें गर्जन करने लगती हैं और उस वैरागी के मन की कुटिया पर दुःख के बादल घुमड़ने लगते हैं, सघन अन्धकार छा जाता है।

झंझा झकोर गर्जन था,
बिजली थी नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ घेरा डाला।

ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य का आधार कोई आप बीती थी। वह बीत तो गयी किन्तु उसका स्मृति-दंश अब भी रह-रह कर कवि के मानस में चुभता रहता है।

वे दिन कितने सुन्दर थे,
जब सावन सघन बरसते,

ऐसा ही नहीं कि आँसू में कवि की वेदना का गुणगान ही हो या यह करुणा केवल पाठक की वेदनाओं की कष्टदायक अनुभूति मात्र ही कराती हो, प्रत्युत यह गिरते को उठाने वाली है: निराशा में आशा का और मृत्यु में जीवन का संचार करने वाली है—

सबका निचोड़ लेकर तुम,
सूखे से इस जीवन में,
बरसो प्रभात हिमकर सा,
आँसू इस विश्व-सदन में।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आँसू एक ऐसी शुद्ध एवं कलुष-रहित गंगा है, जिसके स्पर्श मात्र से पाठक में मन्त्र मुग्धता और सब कुछ कर डालने की प्रेरणा आ जाती है।

वैयक्तिकता 'आँसू' में प्रसाद का सर्वतोन्मुखी गुण है। कवि की वैयक्तिकता जीवन की असंगतियों को ही वैयक्तिक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं करती, बल्कि

प्रत्येक परिस्थिति में भावानुरूप कुछ करने की प्रेरणा देती है। इससे कवि की लोक-चेतना और लोक-मंगल की गहन भावना का दिग्दर्शन होता है।

जगती का कलुष अपावन,
तेरी विदग्धता पावे।
फिर निखर उठे निर्मलता,
यह पाप पुण्य हो जावे।

कवि सभी मुखरताओं को पाना चाहता है, जागरण का संकेत करता है और आलस्य से जागृति की ओर चलने की प्रेरणा देता है।

है जन्म-जन्म के जीवन,
साथी संसृति के दुःख में,
पावन प्रभात हो जावे,
जागे आलस के सुख में,

इन सभी उपादानों के माध्यम से वह अपनी दुनियाँ के सौन्दर्य को इन रूपों में वर्णित करता है तथा कल्पना जगत की ऊँचाइयों पर उड़कर सारी वस्तुओं को पहचानता है।

इस छोटी सी सीपी में,
रत्नाकर खेल रहा है,
करुणा की इन बूँदों में,
आनन्द उड़ेल रहा है।

× × ×

है पड़ी हुई मुख ढक कर,
मन की जितनी पीड़ायें,
वे हँसने लगी सुमन सी,
करती कोमल क्रीड़ायें।

आँसू केवल रुदन-काव्य नहीं प्रत्युत इसमें कवि अपने आँसुओं का महत्व भी मण्डित करता है और इसके लिये वह प्रयत्नशील भी है।

आँसू वर्षा से सिंच कर
दोनों ही कूल हरा हो,
उस शरद प्रसन्न नदी में,
जीवन द्रव अमल भरा हो।

इतनी उत्कृष्ट व्यञ्जना, सौख्य की रस-धारा जागृति के प्रज्वलित चिह्न अन्यत्र मिलना दुर्लभ हैं—

उद्वेलित तरल तरंगे,
मन की न लौट आवेंगी।
हाँ, उस अनन्त कोने को,
वे सच नहला आवेंगी।

संगीतात्मकता की दृष्टि से आँसू एक श्रेष्ठ गीति-काव्य है। आँसू के सभी पद गेय हैं। ये सब पद हृदय में अद्‌भुत आनन्द उत्पन्न करने वाली रसधारा के समान हैं।

अन्त में गीतिकाव्य के चौथे लक्षण 'संक्षिप्तता' को लेते हुये यह कहा जा सकता है कि आँसू गीतिकाव्य के सम्पूर्ण तत्वों का संग्रह है।

'आँसू' में कवि के आलम्बन की लौकिकता और अलौकिकता को लेकर साहित्य-जगत में पर्याप्त विवाद बना रहा; क्योंकि वे स्वयं (आत्मा) को अज्ञात सत्ता (परमात्मा) के पाने के लिये आँसू बहाते दीखते हैं—

कुछ शेष चिन्ह हैं केवल,
मेरे उस महामिलन के॥

किन्तु बाद में करुणा को लौकिकता की भावभूमि पर ही प्रतिष्ठित कर देता है—

पतझड़ था झाड़ खड़े थे,
सूखी सी फुलवारी में,
किसलय नवकुसुम बिछाकर,
आये तुम इस क्यारी में॥

कुछ भी हो आँसू का काव्याधार पारलौकिक प्रतीत नहीं होता, वरन् लौकिक भावभूमि को सुन्दरतम आभा से दीप्त करता है।

आँसू में केवल अभावजन्य निराशा के स्वर नहीं है, प्रत्युत उसमें एक ऐसी शक्ति है जो बलिदानी प्रेरणा की संदेशवाहिका है और साथ ही साथ मानव-जीवन के साथ भावमयी भूमिका भी निभाती है—

निर्भय जगती को तेरा,
मंगलमय मिले उजाला।
इस जलते हुये हृदय की,
कल्याणी शीतल ज्वाला॥

इस प्रकार आँसू निराशा में आशा और मृत्यु में जीवन की आभायुक्त झाँकी है।

२६ जनवरी की प्राचीन घटनायें—

—इसी दिन बाबर की मृत्यु हुई। (१५३०)
—इसी दिन शेरशाह ने हुमायूँ को हराया। (१५३९)
—इसी दिन जहाँगीर पैदा हुआ। (१५५४)
—इसी दिन ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सन्धि पर हस्ताक्षर किये। (१८१४)
—इसी दिन कलकत्ता व बम्बई के बीच रेल चली। (१८७६)
—इसी दिन बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बीच टेलीफोन प्रारम्भ हुआ। (१८८१)
—इसी दिन बी० बी० सी० रेडियो स्टेशन पूरा हुआ। (१८८४)
—इसी दिन भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ली। (१९३०)

प्रदीप कुमार 'नवम क'

‘कामायनी’—एक दृष्टि

—संजय श्रीवास्तव "दशम क"

[एक अमरकृति का संक्षिप्त विवरण-मूल कथानक के रूप में]

‘कामायनी’ काव्य हिन्दी साहित्य का एक ऐसा महाग्रन्थ है, जिसमें मानव जीवन के यथार्थ और आदर्श का एक मनोवैज्ञानिक समन्वय है। इसकी दिव्य-गाथा को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है।

हिम गिरि के उतुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।

जल-प्लावन के भयानक प्रकोप में देव-सृष्टि के ध्वंस हो जाने के बाद सौभाग्य से केवल मनु ही शेष रह जाते हैं। हिमालय की ऊँची चोटी पर एक शीतल-शिला की छाया में वे शरण लेते हैं और वहीं बैठे-बैठे वे अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर विचार-मग्न हो जाते हैं। जल-प्लावन के समाप्त होने पर प्रकृति के सभी उपादान जब पुनः प्रकृतिस्थ से होने लगे तो वनस्पतियों का अंकुरण और विकास होने लगा, संपूर्ण सृष्टि पुनः पूर्ववत् हरी-भरी हो गई। सृष्टि के रूप-रंग को देखकर मनु के हृदय मे आशा का संचार हुआ। उन्हें चारों ओर जीवन की पुकार सुनाई पड़ने लगी। मनु ने पर्वत की एक गुफा में अपना निवास स्थान बनाया और प्रलय-सागर के तट पर अग्निहोत्र एवं पाक-यज्ञ करने लगे और इस प्रकार वे निष्क्रियता त्यागकर कर्म में प्रवृत्त हुये। इस आशा से कि सम्भवतः कोई प्राणी उन्हीं के समान शेष बच गया हो, वे अग्निहोत्र के अवशिष्ट अन्न को दूर रख आते थे। उनके द्वारा रखे हुये अवशिष्ट अन्न को देखकर किसी प्राणी के जीवित होने का अनुमान करके एक दिन श्रद्धा उनके पास आ पहुँची। कवि ने श्रद्धा को काम और रति की पुत्री माना है। उनके अनुसार वह इस संसृति में प्रेमकला का संदेश सुनाने के लिये अवतरित हुई है:—

यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूल-शक्ति थी प्रेमकला।
उसका सन्देश सुनाने को
संसृति में आयी वह अमला।

श्रद्धा अपने अप्रतिम सौन्दर्य एवं निश्चिन्त मनोभावों को लिये हुए शनैः शनैः मनु के पास तक पहुँच जाती है और इस स्फीत शिराओं वाले मनु को देखकर सीधा प्रश्न करती है:-

कौन तुम संसृति जलनिधि तीर,
तरंगों से फेंकी मणि एक।
कर रहे निर्जन का चुपचाप,
प्रभा की धारा से अभिषेक।

प्रश्न सुनकर मनु चौंक उठे—

सुना यह मनु ने मधु गुंजार,
मधुकरी का सा जब सानन्द।
किये मुख नीचा कमल समान,
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।

और फिर :—

एक झटका सा लगा सहर्ष,
निरखने लगे लुटे से कौन।
गा रहा यह सुन्दर संगीत,
कुतूहल रह न सका फिर मौन।

परस्पर परिचय के पश्चात् श्रद्धा का मधुर प्रेम तथा आशावादी चरित्र मनु को प्रभावित किये बिना न रहा सका और दोनों एक दूसरे के पूरक की भाँति निवास करने लगे।

जल-प्लावन से 'किलात' और 'आकुलि' नामक दो असुर भी बचे हुये थे, उनका मनु से परिचय हुआ और मनु उनकी प्रेरणा से मित्रावरुण यज्ञ करके पशु-हिंसा प्रारम्भ कर देते हैं। श्रद्धा का हिंसा से विरोध है, वह मनु को रोकती है, किन्तु मनु की उच्छृङ्खल प्रवृत्तियाँ बढ़ती ही जातीं हैं और वे स्वार्थपरायण व्यक्ति के रूप में अपनी इच्छा को ही प्रधानता देने लगते हैं। आखेट मृगया शुरू हो जाती है, जीवन में हिंसा और उत्पात का प्राधान्य हो जाता है। इधर श्रद्धा गर्भवती होने के कारण घर बसाने की धुन में लगी रहती है। भावी संतान के वस्त्र-निर्माण, कुटीर-प्रसाधन, शालि-संग्रह में ही उसका अधिक समय व्यतीत होता है।

मनु आत्म-सुख लोभी श्रद्धा के इस क्रिया व्यापार में अपने प्रति उपेक्षा देखते हैं, उन्हें यह अच्छा नहीं लगता है कि श्रद्धा का समर्पण किसी और के लिये हो अथवा वह उनको छोड़कर किसी और की चिंता करे।

उनके मन में ईर्ष्या की ज्वाला धधक उठती है और वे श्रद्धा को उसी गुफा में एकाकी छोड़कर अतृप्त भोग लालसा की तुष्टि के लिये शारीरिक सुखों के अन्वेषण में चल पड़े और भूलते-भटकते उजड़े हुये सारस्वत प्रदेश में जा पहुँचे। इस नगर की रानी इड़ा से उनकी भेंट हुई।

इड़ा को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उस ध्वस्त नगर को फिर से बसाने में योग दे सके। संयोग की बात, मनु को यह कार्य सौंपकर इड़ा ने उन्हें नगर का शासक भी बना दिया। मनु ने अपने सामर्थ्यानुसार उस ध्वस्त नगर को फिर से बसाने में पूरा योग दिया और नगर सब प्रकार के वैभव से परिपूर्ण दिखाई देने लगा। नगर में सुख-भोग के समस्त उपकरण जुट जाने पर मनु का मन उसके भोग विलास के लिये व्यग्र हो उठा और वे इड़ा के प्रति अपने मन की वासना को व्यक्त करने में भी संकोच नहीं कर सके। मनु की उद्याम वासना इड़ा को चुनौती देकर सामने आती है। इड़ा मनु के प्रति विद्रोह करती है और सारस्वत प्रदेश की जनता भी इड़ा का साथ देती है! 'किलात' और 'आकुलि' इस विद्रोह के नेता बनते हैं और मनु को भयंकर युद्ध संघर्ष का सामना करना पड़ता है। युद्ध में मनु अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

स्वप्न द्वारा मनु के अहित का ज्ञान प्राप्त करके उनकी खोज में भटकती हुई श्रद्धा भी अपने पुत्र के साथ युद्ध भूमि में पहुँच जाती है। इड़ा श्रद्धा को विश्रान्त बटोही के रूप में देखकर कुछ द्रवित होती है और उसे सान्त्वना प्रदान करती हुई कहती है :—

जीवन की लम्बी यात्रा में,
खोये भी हैं मिल जाते।
जीवन है तो कभी मिलन है,
कट जातीं दुख की रातें।

श्रद्धा को देखकर मनु के मन में अपार लज्जा और क्षोभ हुआ। वे अपने कर्मों पर पश्चाताप करने लगे, किन्तु श्रद्धा के मिल जाने से उन्हें बड़ा आनन्द और सुख प्राप्त हुआ। वे श्रद्धा से उस देश के बाहर ले चलने के लिए प्रार्थना करने लगे; क्योंकि उन्हें भय था कि वे फिर कहीं श्रद्धा को न खो बैठें। श्रद्धा ने कुछ स्वस्थ हो जाने तक ठहरने के लिए कहा। रात्रि में मनु के मन में श्रद्धा के प्रति अपने द्वारा किये हुये अपराधों और श्रद्धा को मुँह दिखाना भी उनकी शक्ति से परे हो गया और वे रात्रि में चुपचाप भाग गये।

मनु के भाग जाने से श्रद्धा निराश नहीं होती वरन्

अपने पुत्र मानव को इड़ा को सौंप कर और उसे इड़ा की शासन-व्यवस्था में सहयोग देने का आदेश देकर स्वयं मनु की खोज में निकल पड़ती है। मनु वहाँ से भाग कर सरस्वती नदी के किनारे तपस्या करने लगे थे। ढूँढ़ते-खोजते श्रद्धा वहाँ आ पहुँची। श्रद्धा के पहुँचते ही मनु को नटराज शिव के दर्शन होते हैं। मनु श्रद्धा से कहते हैं कि वह उन्हें शिव के चरणों में ले चलने के लिए सहायता करे। श्रद्धा मनु का पथ - प्रदर्शन करती है और मार्ग में चलते समय त्रिपुर का रहस्य भी मनु को समझाती है——

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

श्रद्धा अपनी स्थिति से सामरस्य की स्थिति उत्पन्न करके मनु को अपार आनन्द से परिपूर्ण कर देती है। मनु को तत्काल एक दिव्य अनाहत नाद सुनाई पड़ता है और स्वप्न, स्वाप, जागरण आदि सब नष्ट हो जाते हैं। मनु को एक अखण्ड आनन्द का अनुभव होता है।

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

मनु को लेकर श्रद्धा कैलाश की ओर चल पड़ी। मार्ग की कठिनाइयों से मनु, जर्जर हो कर पुनः लौट चलने का आग्रह करने लगे, किन्तु श्रद्धा ने बतलाया कि यहाँ पहुँच कर लौटना सरल कार्य नहीं है, असम्भव है। वह उन्हें उत्साहित करके मार्ग पर अग्रसर करती रही और मनु को उस लोक का दर्शन कराया जो दिन-रात और नक्षत्रादि से परे था। आगे बढ़ने पर मनु को तीन विन्दु इच्छा, कर्म और ज्ञान दिखलाई पड़े। श्रद्धा ने उन विन्दुओं का रहस्य मनु को समझाया और हँस पड़ी। उसके हँसते ही वे तीनों विन्दु एकाकार हो गये और चतुर्दिक आनंद का प्रसार हो गया। मनु आनंद का दर्शन करते ही समाधिस्थ हो गये। श्रद्धा मनु की अर्चना के लिए प्रस्तुत हुई। इसी समय सारस्वती प्रदेश के सभी निवासी इड़ा और मनु–पुत्र मानव तीर्थ यात्रा करते हुए वहाँ पहुँच गये और इस प्रकार सभी अखण्ड आनन्द की उपलब्धि करके उसमें मग्न हो गये।

वेदों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी इस मानव जाति की आशा-ज्योति कथा को मनोवैज्ञानिक स्वरूप में ढाल कर साहित्यकार श्री जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को तो अनुपम निधि प्रदान की ही है, साथ ही विश्व-मानवता को भी बिखराव-टकराव से विरत कर एक दिव्य प्रकाश-पथ अवलोकित कराया है। "कामायनी" के रचयिता, उस अप्रतिम साहित्य-साधक के चरणों में मेरा शत्-शत् नमन।

पर्व और त्योहारों की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि

आशुतोष शर्मा दशम 'क'

[त्योहारों की पिटती लीक से पीड़ित एक किशोर मन की सांस्कृतिक खोज]

कर्त्तव्य-पथ का प्रेरक रामनवमी—

मनुष्य की महानता की कसौटी स्वयं उसका जीवन-व्यवहार है। शरीर, वाणी और मन के सुन्दर व्यवहार को ही साहित्यकारों तथा शास्त्रकारों ने धर्म कहा है। धर्मात्मा वही होता है जिसका चरित्र उज्ज्वल तथा व्यवहार अनुकरणीय होता है। महापुरुष वह होता है जो कि असाधारण कार्य करे, जिसे देखकर लोग आश्चर्य-चकित हो जायें। साधारण लोगों की अपेक्षा उसमें विशेष गुण होते हैं। इसीलिए लोग उन्हें विशेष आदर और सम्मान देते हैं। वह अपने शरीर की परवाह न करते हुये उसे अपने देश तथा जाति के लिए निःस्वार्थ भाव से समर्पित कर देता है। वह कर्त्तव्य पालन के लिये अपना सर्वस्व होम करने के लिए तैयार रहता है। उसका हृदय कोमल होता है, वह दुखियों के दुख को सहन नहीं कर सकता, वह अपने जीवन की अमूल्य घड़ियों को उनकी ही सेवा में लगा देता है। वह व्यक्ति उनके दुःख को अपना दुःख और सुख को अपना सुख मानकर अपने देश की जनता को अपनी अभिन्न आत्मा मानकर तद्वत् व्यवहार करता है। वह अपनी सम्पत्ति को राष्ट्र की सम्पत्ति मान कर राष्ट्रोत्थान में उसे समर्पित कर देता है। उसके जीवन का लक्ष्य गिरे हुये लोगों को ऊपर उठाना तथा इतना करने पर भी वह बदले की चाह न करना होता है। इस प्रकार की आत्मायें ऊपर से तो मनुष्य की सी दिखती हैं, परन्तु वास्तव में वे देव-तुल्य होती हैं, लोग उनकी चरण-धूल को अपने मस्तक पर लगा कर अपने को धन्य मानते हैं, उनकी पूजा करते हैं, सम्मान करते हैं ताकि वह भी उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके चरण - चिन्हों में चलने का प्रयत्न करें और उसमें सफल हों।

जिन महापुरुषों के प्रति हमारे मन में आदर के भाव अधिक होते हैं उनके जीवन का हम गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करते हैं और यदि हममें गुण ग्राहकता की शक्ति है तो हम उनके गुणों को ग्रहण करने की भी चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि हम आदर्श महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाते हैं ताकि यदि अपने सांसारिक जीवन की व्यस्तता में हम उन्हें भूल गये हों तो पुनः उनके उज्ज्वल और देदीप्यमान चरित्र को अपने स्मृति पटल पर अंकित कर लें।

भारतीय संस्कृति में भगवान राम का चरित्र सबसे उच्च तथा आदर्श रहा है। सहस्त्रों वर्षों से भारतीय जनता इनकी जीवन गाथा सुनती तथा पढ़ती आई है, क्योंकि कर्त्तव्य पालन में पथ-प्रदर्शक के रूप में वे सर्वोपरि हैं। इस रामायण को हम हिन्दू जीवन का

कर्त्तव्य–शास्त्र कह दें तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि भगवान राम के पग-पग में हमें कर्त्तव्य पालन का दिग्दर्शन होता है। जो व्यक्ति, शरीर धारण के रहस्य को समझ कर स्वयं सन्मार्ग पर चलता है, वह निश्चय ही श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अपने आपको समाज का अंग मानता है, समाज के शरीर को अपना शरीर समझ कर जैसे अपने शरीर में पीड़ा होने पर तरह-तरह के उपाय सोचे जाते हैं वैसे ही समाज कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है वही सच्चा समाज सेवी है और तब यह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति कर्त्तव्य-शास्त्र का अध्ययन कर चुका है और अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाने में समर्थ हो पाया है।

भगवान राम उन तीनों कसौटियों पर खरे उतरते हैं। उनके व्यक्तिगत जीवन में कोई ऐसी बात नहीं दिखलाई देती जिससे हम उन्हें सामान्य मनुष्य मान सकें। आध्यात्म रामायण में वह स्वयं अपने श्री मुख से वार्तालाप करते हुये कहते हैं कि "राम कभी झूठ नहीं बोलता है। वह एक बात करता है।" ऐसे उत्कट साहस के साथ यह शब्द कहने की सामर्थ्य हर किसी में नहीं है। उन्होंने भोग में त्याग का आदर्श हमारे सम्मुख रखा है। राजकुमार होने के नाते वह सभी भोगों का भोग कर सकते थे, परन्तु जब त्याग का समय आया तब उन्हें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। महर्षि बाल्मीकि के शब्दों में :—

"आहतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकार विभ्रमः ॥"

अर्थात् "राज्याभिषेक के लिए बुलाये गये और वन के लिए भेजे गये या विदा किये गये राम की मुखाकृति में कोई अन्तर नहीं है।"

भारतीय संस्कृति अनेक ऐसे उदाहरणों से भरी हुई है, जिन्होंने अपने माता-पिता के सम्मुख सब कुछ तुच्छ समझा। भीष्म पितामह जिन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार आजीवन ब्रह्मचर्य और अपने विशाल राज्य में राजा न बनने की शपथ ली थी, मगर किसके लिए ? अपने पिता की प्रसन्नता के लिए। श्रवण कुमार अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बैठाकर देशाटन और समस्त तीर्थों का भ्रमण कराने के लिए सभी प्रकार के कष्टों को झेलते हुये अपने शरीर तक का उत्सर्ग कर बैठा। नचिकेता अपने पिता की प्रसन्नता और कल्याण के लिए यमपुर जाकर यम से साक्षात्कार कर आया, इन सबसे राम का चरित्र कुछ ऊँचा ही है। जिसका राज्याभिषेक होने वाला हो उसे वल्कल पहनाकर चौदह वर्ष के लिये वनवास कह दिया जाय और वह उस आज्ञा को शिरोधार्य करके वन चला जाय। यदि वे भी सामान्य मनुष्यों की ही तरह से लड़-झगड़ कर राज्य प्राप्त कर लेते तो वे आज भारत व विश्व के जनमानस के हृदय — सम्राट न होते। जब उनकी सबसे छोटी माँ कैकेयी उन्हें वनवास का आदेश देती है तब वह कितनी प्रसन्न मुद्रा में यह कहते हैं —

"पिता दीन मोंहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

अध्यात्म रामायण में वे स्वयं माता कैकेयी से कहते हैं कि "मैं पिता के लिए विषपान कर सकता हूँ। अग्नि की ज्वाला में कूद सकता हूँ, स्वयम इस शरीर का भी त्याग कर सकता हूँ।"

जब उन्होंने प्रिय भ्राता भरत के राज्याभिषेक की बात सुनी तब उनके मन में तनिक भी ईर्ष्या, द्वेष जागृत नहीं हुआ, बल्कि वह भरत के लाख प्रयत्न करने पर भी उसे श्रेष्ठ राजा बनने के उपदेश देते रहे।

वे न केवल अपने लिए बल्कि राष्ट्र तक के लिए आसुरी शक्तियों को समाप्त करते रहे। प्रजा के लिए उन्हें अपनी प्रिय पत्नी सीता तक का त्याग करना पड़ा। शायद ही किसी देश या संस्कृति में इस प्रकार का त्याग दृष्टि गोचर हो।

रामनवमी के शुभावसर पर हमें सभायें आयोजित करके रामचन्द्र जी के चरित्र का गुण गान करते हुये अपने जीवन को तो उनके अनुरूप बनाना ही चाहिए, बल्कि सामान्य जनता को भी उपरोक्त गुणों को विस्तृत रूप से बताना चाहिए। हमें जीवन भर रामचन्द्र जी के चरित्र का गुण गान ही नहीं करना हैं बल्कि अपने जीवन को उनके जीवन से प्रेरणा लेकर श्रेष्ठ तथा आदर्श बनाना है. यह प्रेरणा हमें रामनवमी की शुभ बेला में लेनी ही चाहिये।

एक भला बुरा पत्र

शुभ कामनाओं सहित

[नोट—पहले एक बार पूरे पत्र को पढ़ते जाइये तो आप को किसी भले व्यक्ति का पत्र प्रतीत होगा। यदि आप (×) चिन्ह वाली पंक्तियों को छोड़ कर पढ़ें तो आप देखेंगे कि इसका रंग रूप ही बदल गया है।]

प्रिय मित्र;

जय हिन्द;

आपका पत्र मिला। पढ़ कर हर्ष हुआ;
कि आप छमाही परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ रहे,परन्तु यह जान कर बड़ा दुख हुआ (×)
कि आप सख्त बीमार हैं। भगवान से यही प्रार्थना है कि आप;
शीघ्र स्वस्थ हो जायें। आगामी परीक्षा में किसी लड़के के नम्बर आप से (×)
कभी अच्छे न हो। यदि मेरे हृदय में सच्ची भक्ति है तो अवश्य ही;
आगामी परीक्षा में प्रथम रहेंगे। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि (×)
भगवान मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे। अगला पत्र यह समाचार लाये कि
आपका समय;
चैन से बीतता है। अब यह इच्छा है कि संसार देखे कि यह मेरा अरमान (×)
पूरा हो गया है, तभी मेरा हृदय पूर्णतया शान्त होगा। यह सुन कर माता जी;
तो विचलित हो उठीं। आपका स्वस्थ होने का समाचार मिलने पर उन (×)
की खुशी का ठिकाना न रहेगा। इसलिए वह अवश्य मिठाई बाँटेंगी;
और ऐसा होना स्वाभाविक है। वह इस बात को भूली नहीं हैं कि अब भी (×)
उन्हें अच्छी प्रकार याद है जब हम दोनों वहाँ साथ-साथ पढ़ते थे उस समय;
आप मुझे छोटा भाई कहा करते थे कसने में ही नहीं व्यवहार में भी मैं [×]
आपका छोटा भाई था। जिसे आप अत्यन्त प्यार करते थे;
मेरी त्रुटियों से खिन्न होकर आपके हृदय में जो ग्लानि हुई थी [×]
उसका भी अन्त हो गया है। यह सुन कर बड़ी खुशी हो रही है;
मैं अपने आपको बहुत धिक्कारता हूँ। आपका रुष्ट होना उचित था [×]

आपका——
सुनील तनेजा, कक्षा नवम 'ख'

चरित्र बल

—सञ्जय चक्रवर्ती, दशम 'क'

[पाश्चात्य भौतिकता की चकाचौंध में विस्मृत होता हुआ एक भारतीय गुणरत्न]

एक सुभाषित हैः—

"आचारः परमोधर्म"

अर्थात्—वास्तव में महान धर्म सच्चरित्रता है ।

इसी प्रकार एक अंग्रेजी कहावत हैः—

Wealth is lost nothing is lost.
Health is lost something is lost.
Character is lost everything is lost.

भाव यह है, कि धन की क्षति कोई क्षति नहीं है, स्वास्थ्य की क्षति कुछ हानिकारक है परन्तु चरित्र की क्षति सर्वस्व क्षति तुल्य है। उपर्युक्त वाक्यों से चरित्र बल का प्रताप प्रत्यक्ष है। चरित्र बल ऐसा महान बल है, जिस पर मनुष्य जीवन की सार्थकता अवलम्बित है। चरित्र बल मनुष्य को देवता बनाता है तथा उसे अमरत्व प्रदान करता है। चरित्र बल मानवता की खरी कसौटी है। इसका घनिष्ठ सम्बन्ध हमारे व्यावहारिक जीवन से है, अतः इसकी महानता है।

मनुष्य जन्मजात अच्छा, बुरा, पापी, पुण्यात्मा, अशक्त अथवा सशक्त नहीं होता है। उसकी आत्मा सदैव सर्वथा पवित्र तथा निष्कलंक होती है। वास्तव में चरित्र बल सद्वृत्तियों का संगठित बल है।

चरित्र बल की प्राप्ति का मुख्य द्वार ब्रह्मचर्य धर्म का पालन है। चरित्र बल की वृद्धि में योग देने वाले महान गुण विनय, उदारता, सत्संग, सत्यता आदि हैं। विनयी सर्वत्र विजयी होता है। इसके सहारे मनुष्य ऊपर उठता है और प्राणिमात्र की सहानुभूति प्राप्त करने में समर्थ होता है। उदार व्यक्ति के लिए विश्व कुटुम्ब प्रतीत होता है। राष्ट्रपिता बापू अपने शोषक गौरांगों को भी प्रेम और प्यार की दृष्टि से देखते थे। उन्हें उनसे नहीं प्रत्युत उनकी शासन प्रणाली से विरोध था।

चरित्र बल के संचय में सत्संग बहुत सहायक है। भ्रष्ट चरित्र की संगत महान् आत्माओं को भी पतित बना देती है। सच्चरित्र भगवान् बुद्ध के आगे बड़े-बड़े चोर, डाकू तथा हत्यारे तक नत मस्तक हो जाते थे।

चरित्र बल के लिये चिन्तन की स्थिरता, लोभ का त्याग, निष्कपटता, कृतज्ञता, सरलता आदि गुणों का होना भी आवश्यक है। कृतज्ञता चरित्र बल को प्रदीप्त

करती है। कृतघ्न का जीवन पशु से भी गया बीता है। लोभ से दूर रहने तथा निष्कपट व्यवहार रखने से चरित्र में कोई धब्बा नहीं लगने पाता।

चरित्र बल की प्राप्ति का मुख्य साधन शिक्षा है। अनेक जन अनुभव अभ्यास एवं सत्संग से इसकी प्राप्ति में समर्थ हुए हैं। बचपन में पड़े अभ्यास अमर हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में सबको चाहिए कि बच्चे में चरित्र बल के सहायक गुणों का अभ्यास बचपन से करायें।

सच्चरित्रता एक कठिन साधन है। इस साधन में सफल व्यक्ति ही सच्चा नागरिक हो सकता है। चरित्र बल वाली सरकार ही न्याय-व्यवस्था में सफल हो सकती है। आज हमारी चरित्रहीनता ही हमारी दुर्गति का कारण हो रही हैं। उत्कोच, चोर बाजारी, डाका, खून आदि अनेक उपद्रव हमारी चरित्रहीनता के कारण हैं।

श्रीकृष्ण, राम, भरत, बुद्ध, प्रताप, शिवा जी, नेपोलियन, लेनिन, विद्या सागर, सुभाषचन्द्र बोस, लिंकन आदि चरित्र बल के उज्ज्वल उदाहरण हैं।

पुरुष ही नहीं सीता, सावित्री, अनसुइया, गार्गी आदि नारियों ने भी चरित्र बल से अपने को अमर कर दिया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चरित्र बल की महिमा अपार और अनन्त है। कोई भी मनुष्य चरित्र बल के सहारे ही समाज-राष्ट्र और विश्व का पूज्य हो सकता है। अतः प्रत्येक माता-पिता का परम कर्त्तव्य है कि वे अपनी प्रिय सन्तान को, जो राष्ट्र की भावी कर्णधार हैं में चरित्र बल का बीज बचपन से ही बोयें। ऐसा करने से उनका, उनके बच्चों का साथ ही राष्ट्र का कल्याण होगा और उनका नाम अमर होगा।

ज्ञान वार्ता

अनिरुद्ध सिंह

१—लाल रुधिर कणिकाओं का व्यास ०·००१ से. मी. होता है।
२—एक हाथी का भार १००० किलो ग्राम होता है।
३—एक मक्खी के पर का भार ०·०००१ ग्राम होता है।
४—चन्द्रमा की चाल ९८० मी०/से. है।
५—ध्वनि की गति ७९० मी०/मिनट है।
६—घोड़ा खड़े-खड़े ही सोता है।
७—जिराफ के मुँह में जीभ नहीं होती है।
८—जापानी मुर्गा 'याकोहामा' की पूँछ १८ फीट लम्बी होती है।
९—अंग्रेज लोग मित्र के स्वागत में टोपी उतार लेते हैं।
१०—तिब्बत के लोग मित्र के स्वागत में जीभ बाहर निकाल लेते हैं।
११—हाथी की ऊँचाई उसके पैर की परिधि के बराबर होती है।
१२—बन्दर एवं हाथी के थन उनकी अगली टाँगों के पास होते हैं।

एक आदर्श कारागार

—कपिल कपूर, दशम ख

[कारागार में मनोवैज्ञानिक परिचर्या का एक जीवंत तथा चुनौती भरा वर्णन]

मैक्सिको देश के टालुका नगर में पर्वतीय अंचल के मध्य एक ऐसा कारागार स्थापित किया गया है, जो संसार की प्रायः प्रत्येक कारागारीय-दण्डव्यवस्था-संबन्धी संस्थाओं से भिन्न है। अन्य काराओं की भाँति उसमें रक्षकों की भरमार नहीं है। उसमें केवल मुख्य द्वार पर दो एक रक्षकों का ही अस्तित्व है। अन्य किसी स्थान पर बन्दियों पर कोई निषेधाज्ञा नहीं है। कारागार में गुलाब के खुशनुमा फूल एक विश्व विद्यालय की पुष्प वाटिका की याद दिलाते हैं। कैदियों को Classical music भी सुनाये जाते हैं। इतना ही नहीं लगभग ६० से लेकर ६००० तक संख्या में कैदी अपनी रातें जेल की दीवारों के बाहर व्यतीत करते हैं।

किन्तु सबसे अधिक विशेष बात जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है वह यह कि टालुका में, जो मैक्सिको की केन्द्रीय कारा है, प्रत्येक कैदी पर लगभग ३५) प्रतिदिन व्यय होता है। इतना व्यय विश्व का कोई भी देश अपराधियों पर या समाज को खोखला करने वालों पर नहीं कर सकेगा।

परन्तु इन सब आयोजनों का एक बड़ा सुफल दृष्टिगत हो रहा है। टालुका की भव्यकारा में १३८०० बन्दी रखे जाते हैं। उनमें से केवल २% अपराधी ही पुनः न्याय द्वारा दण्डित होते हैं। वहाँ उनके साथ जो सद्-व्यवहार होता है उससे उनका हृदय-परिवर्तन हो जाता है, साथ ही समाज में उनका स्थान भी हीन नहीं बनता।

टालुका कारागार की स्थापना के पीछे एक बहुत बड़ा प्रयत्न और एक सुबद्ध योजना कार्यान्वित हुई है। इस कारागार के लिये ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति की गयी जो कारागार के कार्य के लिये अनुभवहीन थे और जो अपराधियों के प्रति संवेदना प्रदर्शित कर सकते थे। इन कर्मचारियों को दण्ड सम्बन्धी कोई शिक्षा नहीं दी गई वरन् अपराधिक मनो-वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा उनको अपने विषय का पूर्ण प्रशिक्षण दिया गया। उनको ऐसा साहस प्रदान किया गया, जिससे वे अपने संरक्षयों (कैदियों) के बीच निःशस्त्र किन्तु निर्द्वन्द्व विचरण कर सकें। उनको अपराधियों से कड़ाई के साथ अच्छाई से व्यवहार की शिक्षा दी गयी। इसी कारण पारस्परिक विश्वास तथा संवेदना के कारण टालुका कारागार से भागने की घटनायें नगण्य सी हैं, जो घटनायें हुई भी हैं, उनसे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये किसी असन्तोष के कारण घटित हुई हैं।

कैदियों से कार्य कराने वाले रक्षक या गार्ड उनको कभी डाटते नहीं हैं। कैदियों को अच्छा भोजन स्वच्छ वेश तथा अन्य सुविधायें दी जाती हैं। उनको ऐसी रचनात्मक शिक्षा भी दी जाती है, जिसके द्वारा वे जेल से छूटने पर अपनी जीविका सरलता से चला सकते हैं, और साथ ही भविष्य की मनोरम कल्पनायें भी कर सकते हैं। यदि कोई कैदी दो दिन तक अच्छा व्यवहार करता है तो उसकी सजा में एक दिन की कमी हो जाती

है,परन्तु किसी भी बंदी को प्राइमरी शिक्षा के बिना जेलमुक्त नहीं किया जाता। प्रत्येक बन्दी को कारा-पाठशाला में भी प्रवेश लेना पड़ता है। इस प्रकार कैदी एक साक्षर व्यक्ति तथा समाज का रचनात्मक अंग बन कर बाहर निकलता है।

'टालुका' का प्रशासन कैदियों के आश्रितों की भी सहायता करती है। कैदी का जीवन जेल से लौटने के बाद नारकीय न हो जाये; उसको पारिवारिक तथा सामाजिक वहिष्कार न झेलने पड़ें इसका पूर्ण ध्यान रखा जाता है। टालुका संसार की सर्व प्रथम कारा है, जिसमें कैदी के आश्रितों की भी रक्षा की जाती है। किन्तु यदि कैदी टालुका के आधारभूत नियमों को नहीं मानता तो उसकी सजा बढ़ भी सकती है।

कैदी प्रत्येक रविवार को लॉन में अपने परिवार के साथ खेल सकता है तथा आनन्द के साथ पिकनिक भी मना सकता है। दम्पतियों के लिये रातें गुजारने के लिये कुछ कमरे भी दिये जाते हैं। इस कारण प्रायः प्रत्येक कैदी से मिलने उसके पारिवारिक सम्बन्धी नियमित आते हैं; किन्तु यदि मिलने की प्रक्रिया में कुछ अनियमितता आ जाती है तो सामाजिक कार्यकर्ता या जेल के कर्मचारी जाकर उसके परिवार की स्थिति का मुआयना करते हैं। साथ ही आवश्यक सहायता भी देते हैं।

जब उसके छूटने में एक दो वर्ष रह जाते हैं, तो उसको घर जाने की छूट भी मिल जाती है। वे अपने परिवार में जाकर जीविका का साधन खोज सकते हैं और नवीन विकास के उन्मेष की आशा भी कर सकते हैं। सामाजिक कार्यकर्त्ता समाज को उसकी अपराधी-मनोवृत्ति समाप्त हो जाने का विश्वास दिलाकर उसको सामाजिक वहिष्कार से बचाता है।

प्रश्न यह उठता है कि वास्तव में यह सब किया क्यों जा रहा है? क्या जनता के करों का यह दुरुपयोग नहीं है? क्या जो धन अराजक तत्वों के लिये लगाया जा रहा है वह समाज के निम्न वर्गों के उत्थान के लिये नहीं लगाया जा सकता? इन सब तर्कों को एक तर्क ही काट देता है। इस सबके पीछे एक ठोस कल्पना यह है कि अपराधियों को समाज का रचनात्मक अंग बनाना ही वास्तव में सबसे बड़ी मितव्ययिता है। इसी के द्वारा मानवता तथा धन दोनों का संरक्षण किया जा सकता है। टालुका की आधार-शिला इसी लक्ष्य को लेकर स्थापित की गयी थी और वास्तव में जैसी इससे आशा थी उससे अधिक सुफल यह प्रदान कर रही है। क्या हमारे देश में ऐसी शुरुआत हो सकेगी?

आज का जुआँ 'लाटरी'

—धर्मवीर त्रेहन, दशम 'क'

[व्यापारिक द्यूत की बढ़ती मनोवृत्ति को अनावृत करती एक किशोर कलम]

'एक रुपये में दस लाख'। 'एक रुपये में दस लाख'। 'कल ही खुलने जा रही स्टेट लाटरी'। लाला जी, आइए। किसी शहर के किसी भी चौराहे पर यह दृश्य देखा जा सकता है। हाथ में माइक पकड़े एक व्यक्ति अपने आस-पास खड़ी भीड़ को जबानी सब्जबाग दिखा रहा है, तथा उसका अन्य साथी भीड़ के एक-एक आदमी से एक-एक रुपये लेकर उनके नाम पते पूछ कर उन्हें रंगीन टिकटें थमाता जा रहा है।

लाटरी की इस परम्परा की शुरुआत सन् १७८४ में हुयी थी, जब सेंट जान चर्च द्वारा अपने देश में प्रथम बार लाटरी चलाई गई थी। उसके बाद आज धीरे-धीरे प्रायः सभी राज्य सरकारें बड़े जोर-शोर से लाटरी की इस प्रथा को चला रही हैं और केवल देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। मगर क्या केवल लोकप्रियता ही किसी वस्तु का औचित्य सिद्ध करती है? क्या हर लोकप्रिय वस्तु लाभप्रद होती है?

इस विषय में कोई धारणा बनाने से पहले हमें यह जान लेना अधिक आवश्यक है कि लाटरी है क्या? लाटरी जुएँ का बदला हुआ रूप है। उसी जुएँ का, जिसकी जड़ें अपने देश में काफी गहराई तक फैली हुई हैं। अपने पौराणिक ग्रन्थों और महाकाव्यों में भी जगह-जगह जुएँ का उल्लेख आया है। यद्यपि समय-समय पर इसके रूप बदलते रहे हैं। कभी पासा फेंककर खेला गया, कभी ताश के पत्तों द्वारा और कभी रेस के घोड़ों द्वारा और वर्तमान युग में इसका परिवर्तित रूप यह रंगीन चिटें हैं, जिसे हम लाटरी नाम से जानते हैं।

लखपती बनना कोई आसान काम नहीं। इसके लिये परिश्रम, बुद्धि और तत्परता की आवश्यकता है। निरन्तर प्रयास से ही कोई लखपति बन सकता है, और इस प्रयास के बाद भी यह कोई जरूरी नहीं की हम अपने इष्ट को प्राप्त ही कर लें। और इन परिस्थितियों में यह लाटरी आपको लखपति बनाने बैठी तो फिर क्या आप इस सरल मार्ग का परित्याग कर कष्टमय मार्ग को अपनायेंगे? कदापि नहीं।

मात्र एक रुपये का खर्च तथा लखपति बनने की पूर्ण सम्भावना। न परिश्रम न कोई परेशानी। हाथ पर हाथ धरे रहिये, योजनायें बनाते रहिये प्राप्त होने वाले धन को खर्च करने की। सपनों के महल बनाते रहिये तथा एक सुखद भ्रम में जागते तथा सोते रहिये। जाहिर है कि लाटरी मनुष्य मात्र को दिवा स्वप्न देखने वाला बना कर कर्म से विमुख कर देती है।

लाटरी खरीदने वाला केवल लाटरी ही नहीं खरीदता वरन् कुछ हद तक रूढ़िवादी विचारधारा भी अपना लेता है, तथा भूल जाता है इस नवीन युग की नवीन विचारधारा का अस्तित्व। अक्सर देखने में आता

है कि लाटरी खरीदने वाला मंदिरों में जाने लगता है तथा अपना अधिकांश समय आखें बन्द करके लाटरी देवी की उपासना में बिता देता है। यहाँ तक कि लाटरी निकलने के दिन तक भगवान की वह खुशामद होती है कि पूछिये नहीं।

यदि लाटरी नहीं मिल पाई (ज्यादातर यही होता है) तो उसके दिमाग पर कई दिन तक मातम का वातावरण छाया रहता है।

जुएँ की कट्टर विरोधी सरकार एक तरफ तो जुआँ रोकने के लिये अपनी पूर्ण शक्ति का इस्तेमाल करती है और दूसरी तरफ................। समझ में नहीं आता इतने बड़े पैमाने पर चलाये जा रहे इस जुएँ को सरकार क्यों नहीं बन्द कर रही है।

लाटरी के साथ एक ही नहीं वरन् कई प्रश्न सम्बन्धित हैं। लाटरी पाने वाला व्यक्ति पैसे की तरफ से लापरवाह हो जाता है तथा उसमें कई व्यसन पनपने लगते हैं।

लाटरी काले धन की सहायक है, जिसकी लाटरी निकलती है वह काले धन से सम्बन्धित सेठों के पास जाकर, उनको लाटरी देकर उस लाटरी के मूल्य का धन ले लेता है तथा सेठ सरकार से लाटरी का पैसा ले लेते हैं और इस तरह अपने काले धन को सफेद धन में बदल लेते हैं। परोक्ष रूप में इससे सरकार को आयकर की हानि होती है।

सरकार अक्सर यह कहती है कि लाटरी से प्राप्त धन जनहित में लगाया जाता है तो क्या जनहित करने का यही मार्ग रह गया है? लाटरी के पक्षधर यह दलील दे सकते हैं कि इससे बेरोजगारों की रोजी-रोटी का प्रबन्ध होता है, तो सरकार तस्करी तथा वेश्यावृत्ति रोकने की आवाज क्यों उठाती है, उससे भी तो समाज के एक अंग को रोजी-रोटी मिलती है। अतः रोजी-रोटी का तर्क जँचता नहीं।

जहाँ तक सवाल है जन-कल्याण का, तो यह भी तर्क थोथा प्रतीत होता है, क्योंकि समाज कल्याण तो (यही पैसा बैंक में जमा करने से) उद्योग-धन्धे चलने से भी हो सकता है।

समाज के अधिकांश व्यक्तियों से रुपये खींच कर उनको झूठे प्रलोभन तथा वादे देकर उसका कुछ अंश समाज के एक दो व्यक्तियों को दे देना कहाँ का न्याय है।

अद्‌भुत पेड़

—अखिलेश शुक्ल, 'नवम क'

साधारण तौर पर किसी को विश्वास नहीं हो सकता है कि वृक्ष भी किसी प्रकार से अद्‌भुत हो सकते हैं। विश्वास हो चाहे न हो, इस अद्‌भुत संसार में अद्‌भुत वृक्ष भी पाये जाते हैं। हम उनमें से कुछ जानकारी नीचे दे रहे हैं।

१. कैलीफोर्निया में 'क्रोधी-वृक्ष' पाया जाता है। यह १० से २० फुट तक ऊँचा होता है; वह अपना क्रोध सनसनाहट तथा खड़खड़ाहट द्वारा प्रस्तुत करता है तथा साथ ही एक विचित्र दुर्गन्ध भी छोड़ता है।

२. दक्षिणी आस्ट्रेलिया में 'ब्लैक-ब्वाय' नामक वृक्ष पाया जाता है। यह सौ वर्ष में सिर्फ एक फुट बढ़ता है। इसका गोंद बहुत अधिक कीमती होता है।

३. दक्षिणी अमेरिका में 'प्यूपा' नामक वृक्ष पाया जाता है जो कि केवल एक बार फलता है।

४. बंगाल में कुछ ऐसे वृक्ष पाये जाते हैं जो सूर्योदय व सूर्यास्त के समय झुक कर लेट जाते हैं व बाद में फिर खड़े हो जाते हैं।

५. पेरिस में एक 'वंशी-वृक्ष' पाया जाता है। इस वृक्ष की पत्तियों में अनेक छोटे-छोटे छिद्र होते हैं, जिनमें वायु घुसने से एक विचित्र प्रकार का स्वर उत्पन्न हो जाता है।

६. मध्य अफ्रीका के घने जंगलों मे कुछ ऐसे वृक्ष भी पाये जाते हैं, जिनके फलों के खाने से ज्वर जाता रहता है।

७. ब्राजील के घने जंगलों में 'अग्नि-वृक्ष' पाया जाता है। इस वृक्ष के ऊपरी हिस्से से सदैव अग्नि की लपटें निकलती रहती हैं।

८. जावा के समुद्री तट पर 'यूपस' नामक एक नरभक्षी वृक्ष पाया जाता है, जो धोखे से आये हुए जानवर या मनुष्य को अपनी नुकीली और कंटीली शाखाओं से जकड़ लेता है और उसका रक्त चूसकर ही उसे छोड़ता है।

तुलसी-साहित्य में लोक-मंगल की भावना

—दीपक सक्सेना, १० ख

तुलसी का नाम आज के समाज में भली प्रकार से परिचित है। उनका नाम ऐसे सन्तों की श्रेणी में रखा जाता है, जिन्होंने अपने आपको सांसारिकता से विमुख करके, जन-सेवा-कार्य काव्य के माध्यम से किया। तुलसी अनाथ थे, उनका जीवन कष्टमय बीता; परन्तु कष्टों को सहते हुए धर्म-ग्रन्थ मानस का प्रणयन करके उन्होंने हिन्दू-समाज को उठने के लिये एक ठोस आधार प्रदान किया। एक ऐसे समय में, जबकि हिन्दुस्थान पर मुगल-साम्राज्य स्थापित हो चुका था, हिन्दू संस्कृति नष्ट हो रही थी ऐसे साहित्य को खड़ा करना अत्यंत दुरूह कार्य था। एक अनाथ बालक का इतना ज्ञानी, भविष्य-दृष्टा हो जाना तथा विश्रृंखल समाज में भक्ति-भावना द्वारा ऐक्य की भावना उत्पन्न करना, तुलसी की अशेष-सामर्थ्य की ओर संकेत करते हैं। तुलसी ने काव्य के माध्यम से जीवन में नवीन प्रेरणा और रस-संचार का प्रयत्न किया था इसी कारण उनके साहित्य में 'लोक-मंगल की भावना' अत्यंत विस्तृत रूप में है। यह एक ऐसा विषय है कि उस पर जितना अधिक लिखा जाये कम ही होगा; फिर भी भावनाओं के अथाह सागर से कुछ बूँदों को लेकर मैं लिखने का प्रयास करूँगा।

तुलसी ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को हर सम्भव दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। उनके इस प्रयास में लोक-मङ्गल की भावना ही सर्वतोन्मुखी है। उनकी इसी भावना को निम्नलिखित उदाहरणों के द्वारा संक्षिप्त रूप में देखा जा सकता है।

इस संसार में सभी व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा अपना अभीष्ट प्राप्त करना चाहते हैं; परन्तु तुलसी के अनुसार जीवन उन्हीं का सफल है जो माता-पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन सिर चढ़ा कर करते हैं तथा परिवार में मङ्गल की भावना किस प्रकार से आ सकती है इसका भी संकेत सुस्पष्ट ही है—

"मातु पिता गुरु स्वाभि सिख,
सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनन कर
न तरु जनम जग जाय॥"
(दोहावली)

जो व्यक्ति समय और साधन का सदुपयोग करके सिद्धि प्राप्त करते हैं और हर समय समता युक्त रहते हैं वे मंगल के मूल हैं—

"साधन समय सुसिद्धि लहि,
उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम,
ते महि मंगल मूल।"
(दोहावली)

तुलसी के अनुसार पति सेवा ही नारियों का धर्म और उनके लिये हितकर भी—

"सहज अपावनि नारि,
पति सेवत सुभ गति लहिय।
जसु गावत श्रुति चारि,
अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥"
(दोहावली)

जीवन कष्ट मय है, कष्टों का निवारण श्रद्धा पूर्वक राम भक्ति में लीन होकर किया जा सकता है—

"सेवा सील सनेह बस,
करि परि हरि प्रिय लोग।
तुलसी ते सब राम सो,
सुख संयोग–वियोग ॥"
(दोहावली)

पृथ्वी पर सभी तत्व उपस्थित हैं परन्तु कर्महीन लोग उन्हें नहीं पा सकते। तुलसी ने इस सम्बन्ध में कर्म की महत्ता इंगित की है—

"सकल पदारथ हैं जग माही।
कर्महीन नर पावत नाहीं ॥"

यद्यपि इसमें संदेह नहीं है कि मित्र, गुरु, स्वामी आदि के घर बिना बुलाये भी जाना चाहिये परन्तु जहाँ कोई विरोध रखता हो, वहाँ (उसके घर) नहीं जाना चाहिये—

"जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा।
जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥
तदपि विरोध मान जहँ कोई।
तहाँ गये कल्यानु न होई ॥"
(रामचरित मानस बालकाण्ड)

संकट की घड़ी पड़ने पर सेवक अपने स्वामी को बुरा-भला कहते हैं परन्तु श्रेष्ठ स्वामी इन बातों पर ध्यान न देकर सेवक की रक्षा करते ही हैं—

"कटु कहिये गाढ़े परे, सुनि समुझि गुसाईं ॥
करहि अन भलेउ को भलो, आपनी भलाई ॥"
(विनय-पत्रिका)

पवन कुमार हनुमान जी मंगल की मूर्ति हैं क्योंकि उनके हृदय में भगवान श्री राम का निवास है अत: वे सब बुराइयों की जड़ काटने वाले हैं—

"मंगल–मूरति मारुत नंदन।
सकल अमंगल मूल निकंदन ॥
पवन तनय संतन हितकारी।
हृदय बिराजत अवध बिहारी।"
(विनय-पत्रिका)

सीता-पति राम के चरणों में अपने को रमाना चाहिये क्योंकि उन्हें छोड़ कर मन के लिये कोई अन्य स्थान रिक्त नहीं हैं—

"सुमिरु सनेह–सहित सीता पति।
राम चरन तजि नहिन आनि गति ॥"
(विनय-पत्रिका)

इस संसार में न कोई जगता है और न कोई सोता है; सब जीवन को व्यर्थ खो रहे हैं। दुःख और रोग के कारण रोते हैं और काम क्रोध (मानसिक व्यथा) के कारण परेशान होते हैं; कलियुग में ऐसा ही होता है—

"जागिये न सोइये, बिगोइए जनमु जाय,
दुख, रोग रोइऐ, कलेसु कोह–काम को।
राजा रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी, ये
अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बाम को ॥"
(कवितावली)

इस बुरे समय में धर्म नष्ट हो गया; ब्रह्मचर्यादि आश्रमों ने अपना स्थान छोड़ दिया, कर्म, उपासना और ज्ञान को अज्ञान आदि ने भगा दिया, वचन मात्र के वैराग्य ने लोगों को (संसार को) ठग लिया; परन्तु जो शरीर, वचन, मन से स्वाभाविक रूप से राम भक्ति में लीन होते हैं वे इन कुप्रभावों से सदा बचते रहते हैं—

"बरन धरमु गयो, आश्रम निवासु तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो–सो है।
करमु, उपासना कुबासनाँ बिनास्यो ग्यानु,
बचन-बिराग, बेष जगतु परो–सो है ॥"
(कवितावली)

'गोरख जगायो जोंगु, भगति भगायो भोगु,
निगम नियोगतें सो केलि ही दरो-सो है ।
कायँ-मन-वचन सुभायँ तुलसी ! है जाहि,
राम को भरोसो, ताहि नाम को भरोसो है ।।"
(कवितावली)

वेद पुराणों को छोड़ कर लोग कुमार्गों को अपना रहे हैं; राजा से लेकर सामान्य व्यक्ति तक अपना पेट भरने में जुटे हुए हैं, आश्रम धर्म नहीं रहा—

"बेद-पुरान बिहाइ सुपंथु,
कुमारग कोटि कुचाल चली है ।
कालु कराल, नृपाल कृपाल न,
राज समाजु बड़ोई छली है ।।
बर्न-बिभाग न आश्रम धर्म,
दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है ।
स्वारथ को परमारथ को,
कलि राम को नामु प्रतापु बली है ।।"
(कवितावली)

जब भी किसी ने बुद्धि, कीर्ति, भलाई आदि पाई है, उसे सत्संग का प्रभाव ही जानना चाहिये, वेदों में भी इनकी प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है—

"मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ।।"
(रामचरित मानस)

सत्संग के बिना विवेक नहीं मिलता, राम की कृपा बिना वह भी सहज रूप से नहीं मिलता । सत्संग कल्याण की जड़ है उसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त की जा सकती है—

"बिनु सतसंग बिबेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
सत संगति मुद मंगल मूला ।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला ।।"

इर्ष्यालु लोग ओले के समान दूसरों की क्षति हेतु अपने प्राण तक दे देते हैं—

"पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं ।
जिमि हिम उपल कृषी दलु गरहीं ।।"
(रामचरित मानस) बालकाण्ड

ऐसे व्यक्ति सदा दूसरों के दोषों को देखते हैं तथा उनको कठोर वचन बोलना ही प्रिय लगता है—

"बचन बज्र जेहि सदा पियारा ।
सहस नयन पर दोष निहारा ।।"
(रामचरित मानस)

ईश्वर ने जड़-चेतन आदि अवयवों को दोषमय बनाया अवश्य हैं,परन्तु संत रूपी हंस दोष-मय जल को त्याग कर दूध को (गुणों को) ही ग्रहण करते हैं—

"जड़ चेतन गुन दोष मय,
बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय,
परिहरि बारि बिकार ।।"
(रामचरित मानस): बालकाण्ड

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी ने मानव जीवन के हर पक्ष पर लेखनी उठाई है । जीवन के किसी भी पक्ष में सबसे सुन्दर स्थिति किन उपायों के अनुसरण से प्राप्त की जा सकती है तथा किस प्रकार किसी विषम परिस्थिति से मुक्ति पाई जा सकती है इसका प्रासंगिक उल्लेख भी तुलसी ने किया है । जीवन में टकराव तथा विशृंखलता को सुबद्धता प्रदान करने के लिये आवश्यक सुझाव भी तुलसी-साहित्य में विद्यमान है । समाज की मर्यादा का पालन तथा प्रत्येक वस्तु को अपने विवेक से देखना तुलसी का महान संदेश है । किन्तु तुलसी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन्होंने सुपात्रों के सद्गुणों पर ही प्रकाश डाला है और अवगुणों को

जान बूझ कर छोड़ा है। इस प्रवृत्ति को भी तुलसी की लोक-मंगल की भावना के अन्तर्गत गिना जा सकता है; क्योंकि मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ भी ग्रहण करता है वह उसके सामने रखे आदर्शों का ही अंश होता है। चूँकि उनके साहित्य में श्रेष्ठ आदर्शों को ही स्थान मिला है, अतः तुलसी-साहित्य को मानव-कल्याण का स्रोत माना जा सकता है। तुलसी संत थे, कवि थे, भविष्य-द्रष्टा थे। व्यक्तिगत जीवन की कठोरताओं को झेलते हुए उन्होंने सदा ही ईश्वर से अपनी रक्षा-हेतु प्रार्थना की। उन्होंने अपने लम्बे जीवनकाल में समाज को अच्छी प्रकार से देखा और जीवन की परिस्थितियों को समझा। इसी कारण मानव-मन में भक्ति का संचार करके उन्होंने सही मार्ग दिखाने का प्रयास किया; उनका वह प्रयास आज भी लिपि-बद्ध रूप में प्राप्त हैं। उनके साहित्य में लोक-मंगल की भावनायें अथाह रूप से भरी है। कोई भी व्यक्ति यदि उसे पढ़े तो बिना प्रभावित हुये नहीं रह सकता।

क्या आप जानते हैं ?

विजय मित्तल, नवम 'क'

—कि संसार का सबसे मूर्ख जन्तु 'ओपोसम' है।

—कि पृथ्वी की आयु लगभग साढ़े छः अरब वर्ष है।

—कि केंचुए के आँख, कान तथा नाक नहीं होते हैं। परन्तु इसके आठ हृदय होते हैं।

—कि मनुष्य के शरीर में अब ३०,०००,०००,०००,०००,००० जीवित कोशिकायें होती हैं।

—कि 'लेमिंग' नामक जन्तु की संख्या जब बहुत अधिक बढ़ जाती है तो यह बहुत बड़ी संख्या में डूब कर मर जाता है।

—कि प्लास्टिक का निर्माण 'एलेक्जेण्डर पार्कस' ने शोरे तथा गन्धक के अम्ल के मिश्रण की 'सैलुलोसी' पदार्थ से क्रिया करा कर किया था।

—कि नेपाल, थाईलैण्ड तथा मॉरीशस में हिन्दू धर्म को विशेष महत्व प्राप्त है।

—कि 'हैंगफिस' नामक जन्तु अपने शरीर में इस प्रकार गाँठ लगा लेता है जिस प्रकार हम रस्सी में गाँठ लगाते हैं।

—कि सिलाई मशीन का निर्माण 'इलियस हॉउ' ने बड़े परिश्रम के पश्चात् किया था।

चलते-फिरते अनोखे मकान

संजय सिंह सचान दशम 'क'

[मानव-जीवन की भावी समस्याओं पर मानव के ही क्रान्तिकारी निदानों का एक दुर्लभ चित्र]

मानव अपने निवास के लिए प्रारम्भ से ही निवास-स्थानों का निर्माण करता आया है। प्रारम्भ में वह जंगलों में, पेड़ के नीचे, पेड़ के ऊपर तथा पर्वतों की गुफाओं में रहा। समय के बढ़ते हुये कदमों के साथ व धीरे-धीरे मानव के मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ मनुष्य घास फूस की बनी झोपड़ियों, मिट्टी व सीमेंट के बने मकानों व कोठियों में रहने लगा। आज भी वह अपने रहने के लिए नित्य नये-नये प्रकार के मकानों के नमूने तैयार कर रहा है, क्योंकि मिट्टी, पत्थर, चूना, सीमेन्ट आदि के मकान इन दिनों बहुत महँगे बनते हैं। फिर इनको एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना भी सम्भव नहीं है। इसीलिये इन दिनों वास्तुशिल्पी, इंजीनियर व वैज्ञानिक ऐसे मकानों व नगरों के निर्माण सम्बन्धी कार्य पर अनुसधान कर रहे हैं, जो कम कीमत के व टिकाऊ हों और एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाये जा सकें। अन्तरिक्ष-विज्ञान की बढ़ती प्रगति के साथ-साथ अब वैज्ञानिक भी हल्के हवा से फुलाये जाने वाले गुब्बारेनुमा मकानों के निर्माण पर विचार कर रहे हैं। उन्होंने इस प्रकार के कुछ मकानों के नमूने भी प्रस्तुत किये हैं।

नये प्रकार के प्लास्टिक के बने गुब्बारेनुमा मकान अब संसार के अनेक देशों में दिखलाई देने लगे हैं। सन् १९७० में 'ओसाका' (जापान) में आयोजित विश्व प्रदर्शनी में अमरीका ने अपने मंडप ब मंठप की छत पारभासी फाइबर ग्लास पदार्थ की बनाई गई थी। हवा से फुलाये हुये लगने वाले इस मण्डप को एक बड़े घेरे में बनाया गया था। आजकल संसार के अनेक देशों में होने वाली प्रदर्शनियों में, बरफीले व रेगिस्तानी इलाकों में इन गुब्बारेनुमा मकानों का सफल प्रयोग होने लगा है।

हवा से फुलाये हुए आकर्षक लगने वाले नये प्रकार के इन गुब्बारेनुमा मकानों की सर्व प्रथम अमरीका के एक उड्डयन-इंजीनियर 'वाल्टर डब्ल्यू. वर्ड' ने परिकल्पना की थी। उत्तरी अमेरिका के सीमान्त पर राडार-स्टेशन बनाये गए। वर्ड ने 'कार्नेल विश्व विद्यालय' को उड्डयन प्रयोगशाला में कपड़े का एक गुम्बदनुमा ढाँचा बनाया। इस मकान के भीतर, बाहर की अपेक्षा कुछ अधिक हवा का दबाव रखकर इसे कायम किया गया था। सबसे विचित्र बात यह थी कि यह मकान अन्दर से गरम था। जब कि बाहर बर्फ थी। इस तरह 'वर्ड' ने अमरीका के टैलस्टार उपग्रह के संचार स्पर्शसूत्र का निर्माण करने के लिए रैडोम' नामक जिस चंदोवे का उपयोग किया था; वह संसार का सबसे बड़ा मकान था।

'वर्ड' के पश्चात् तो इन नये प्रकार के गुब्बारेनुमा मकानों के निर्माण में बड़ी प्रगति हुई है और आजकल

तरह-तरह के डिजाइन बनाये जाने लगे हैं। टोल विश्वविद्यालय में स्थापत्य शिल्प विद्या के प्रोफेसर 'फेलिक्स डूरी' ने एक कम्पनी के लिए प्लास्टिक क बहु विध प्रयोगशाला में एक नये प्रकार का मकान बनाया। जिसमें नाइलोन वस्त्र के आवरण से लेकर कालीन और दीवारों के परदे जैसी चीजें थीं। इस मकान को बनाने के लिये पहले गुब्बारे फुलाये गये और फिर इसके ऊपर 'यूरेथन' (पारदर्शक प्लास्टिक) की परत चढ़ा दी गई थी।

रॉन केंसिगर नामक एक अन्य स्थापत्य शिल्पी ने हाल ही में एक नये प्रकार का मकान बनाया है। इस नये प्रकार के मकान में फोम का उपयोग किया गया है। यह मकान कागज से कुछ भारी तथा लकड़ी जैसा कठोर और अग्निरोधक भी है। इस मकान के नाइलोन आवरण के भीतर और बाहर कठोर फोम का अस्तर किया गया है। खिड़कियों तथा रोशनदानों के लिए काट कर स्थान बनाये गये हैं और इन पर प्लास्टिक के गोलार्ध लगाये गये हैं। इस नये मकान में शयनकक्ष, स्नानागार व धूप के लिए भी स्थान बनाये गये हैं।

अब तो नये प्रकार के मकानों का चलन तेजी से बढ़ता जा रहा है और इन्हें विविध प्रकार के कार्यों के उपयोग में लाया जाने लगा है। इन्हें मनोरंजक स्थलों, खेल-कूद के स्थानों व कालेजों पर चँदोवे के रूप में लगाने का भी परीक्षण किया जा रहा है। इन नये प्रकार गुब्बारेनुमा मकानों के अन्दर के वायुमण्डल को अनुकूल बनाये रखने का भी प्रयास किया जा रहा है। मकानों के भीतर प्रकाश से दिन व रात की स्थिति रखी जाती है। तापमान नियामक यन्त्र प्रणाली से आवश्यकतानुसार शीत, ग्रीष्म, वसन्त और पतझड़ की परिस्थिति उत्पन्न की जा सकती है। गुब्बारेनुमा मकान रिहाय मकानों की दृष्टि से भी बड़े उपयुक्त हैं।

कम खर्च में, किसी भी मौसम में, किसी भी स्‍ पर इन्हें आसानी से खड़ा किया जा सकता है और खोल कर, लपेट कर आसानी से दूसरी जगह ले ज जा सकता है। इन मकानों की उपयोगिता दिन पर बढ़ती जा रही है। यह भी सम्भव है कि भविष्य खेतों व नगरों को तेज वर्षा व धूप से बचाने के इनका प्रयोग किया जाने लगे।

भावी नगरों का निर्माण करने के लिए विश्व स्थापत्यकला विशेषज्ञ और नगर-नियोजकों ने अ अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं जो अपने आप में वि और रोमांचक हैं। 'कारबुज़र' और 'ग्रोपिटास' के अनु भविष्य में ऐसे मकान बनाये जायेंगे जो धरती कम से कम जगह घेरेंगे। इनके अनुसार भविष्य मे पृ पर फौलाद के अण्डाकार खम्भे (स्तम्भ) बनाये जा और इनके ऊपर लटकते मकान होंगे। फ्रांसीसी स्थाप कलाविद 'धौल मेमोत' ने पिरामिडनुमा मकान ब की कल्पना की है, जिसमें खोखला स्तम्भ-केन्द्र होग स्विस वास्तुकार 'हाशरमैन' ने अण्डाकार कमरों कल्पना की है जो गुच्छे की तरह लटकते रहेंगे। जापानी नगर-नियोजक ने गमले की तरह लटके र वाले मकान बनाने की योजना प्रस्तुत की है। फ्रेडमैन ने गतिशील घर का डिजाइन तैयार किया खम्भों पर बना यह तीन कोनों वाला भवन होगा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकेगा।

मेरी सागर–यात्रा

सुधीर सिंह नवम 'ख'

[प्रकृति की गोद की आनन्दाभूति की पहली तरंग में डूबता-तिरता एक अनुभव]

समुद्र की यात्रा एक ऐसी यात्रा है, जो सदैव से मानव का मन अपनी ओर आकर्षित करती रही है, क्योंकि मनुष्य हमेशा ही बाधाओं से टकराता रहा है और वह उन्हें जीतने का प्रयास भी करता रहा है। इन्ही कारणों से मनुष्य ने समुद्र में डूबने तथा समुद्री जन्तुओं के खतरों के साथ ही साथ अन्य सामुद्रिक खतरों का सामना करने के लिए विशालकाय जहाजों तथा विशाल पोतों का निर्माण किया और सदा उनसे भी विशाल पोतों का निर्माण करने के लिये तत्पर रहा है।

समुद्र की रोमांचक यात्रा, समुद्र को देखने की इच्छा मेरे हृदय में भी अत्यन्त उग्र थी और संयोगवश एक दिन वह समय भी आया, जब समुद्र से हजारों कि.मी. दूर रहने के पश्चात् भी मैं लखनऊ–बाम्बे एक्सप्रेस से बम्बई जा पहुँचा। मुझे १६–१०–७६ को ऐसा सुअवसर मिला जब हम "**नवल डाकयार्ड**" जो सामरिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है, जा पहुँचे और लगभग मध्यान्ह ३ बजे "A. S. D. **मोटर लान्च**" पर जा बैठे। सागर अपनी उत्ताल तरंगों के साथ हिलोरें ले रहा था एवं उसकी गर्जन-तर्जन की ध्वनि बहुत ही गूढ़ संगीत के रूप में प्रतीत हो रही थी और ऐसे ही समय में हमारी मोटर लांच तीव्र गति से सागर की छाती को चीरती हुई निकलती जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि सागर निरन्तर हमसे पराजित होता जा रहा है और वास्तव में सागर और मानव की शाश्वत दौड़ में मनुष्य की जीत तथा सागर की पराजय होती जा रही है। इसी खुशी के साथ ही साथ मुझे I N.S विक्रान्त को देखने का भी परम सौभाग्य मिला, जो उस समय लंगर डाले पड़ा था। यह विशाल जहाज बहुत ही सामरिक महत्व का है। इसकी गति २२ नाट, इसकी लम्बाई ६०० फुट तथा इसमें २०००० टन भार सहने की क्षमता है। इसमें २ बड़ी लिफ्टें और ३५ सीहाक और एलाइज जैसे विमान तथा २ हेलीकाप्टर हैं। इसका कार्य भारत की १५०० किमी० लम्बी जल-सीमा की रक्षा करना है। इसमें १५०० नौसैनिक तथा तथा ३०० अफसर कार्य करते हैं। मैंने इस पर स्वयं एक हैलीकाप्टर को उतरते देखा और एक ट्रैक्टर इसे खींच कर ले गया, यह सब देख कर मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण के समक्ष शंका का स्थान कहाँ। I.N.S मैसूर, I.N.S बेतवा. I.N.S. तीर, I.N S. अनूप तथा व्यापारिक जहाजों में महत्वपूर्ण जहाज विक्टोरिया और हर्षवर्धन जहाज देखे। डलमोहाय (जो समुद्र से तेल निकालता है) भी वहाँ आया था जिसे देखने का सौभाग्य हमें अनायास ही मिल गया। समुद्र में छोटे-छोटे तीन टापुओं पर लगी हुयी भारी-भारी तोपों (बैटरियाँ) को भी देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ इसके बाद Gate Way of India (भारत से बाहर जाने का मार्ग) को घूमते हुये वापसी के समय समुद्र में लगे लाइट हाउस और लाइफबाय को भी देखा जो कि जहाजों एवं विशाल पोतों को मार्ग बताते हैं।

भारतीय विज्ञान का विकास

—अवधेश कुमार, 'दशम क'

[अपने देश के पौराणिक काल की उज्ज्वलता के कुछ प्रकाश-कण; आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर।]

हमारी भारतीय संस्कृति मानव-जाति के आदि काल से ही जीवन में नैतिकता तथा पारस्परिक विश्वास का सन्देश देती रही है। हमारी इस संस्कृति की ही विशेषता है कि हमारी आर्यो की सभ्यता तथा उनके आदर्श जीवन-दर्शन आज भी अपने प्रत्यक्ष रूप सर्व प्राप्त होते हैं। हमने संसार को मार्ग-दर्शन के साथ-२ आदर्श जीवन का उदाहरण भी प्रदान किया है। अध्यात्म तथा पारलौकिकता की जैसी तार्किक व्याख्या हमारे वेदों में की गई है। वैसी व्याख्या किसी भी काल के किसी भी देश के इतिहास में नहीं हुई। किन्तु हमारा सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न देश केवल पारलौकिकता के गीत नहीं गाता रहा है। यदि इसके प्राचीन इतिहास का अवलोकन किया जाय तो ऐसे लोगों को भी आश्चर्य ही होगा जो भौतिकता एवं तथाकथित विज्ञान को ही सर्वस्व मानते हैं। हमारी विज्ञान-प्रज्ञा इतनी गहन तथा विस्तृत है कि उसकी थाह लगाना आधुनिक वैज्ञानिको के लिये भी एक कठिन समस्या बन गयी है; किन्तु हमारे देश के विज्ञान ने कभी भी जीवन को विध्वन्सात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास नहीं किया, उसकी दृष्टि रचनात्मक तथा आध्यात्मिक रही है। इसी कारण हमारा विज्ञान कभी भी अभिशाप सिद्ध नहीं हुआ और प्रत्येक युग में उसकी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती गई है। उपर्युक्त अपनी इस मान्यता के लिये मैं कुछ ठोस प्रमाण भी देना चाहूँगा जो निम्नलिखि हैं :—

भारत में ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व ही विज्ञान की प्रगति के अनेक प्रमाण मिलते हैं। विश्व-विश्रुत रसायनज्ञ 'नागार्जुन' तथा महान् गणित-शास्त्री 'बाराह मिहिर' ईसा से ४०० वर्ष पूर्व तत्कालीन समाज के अभिनंदनीय तथा रचनात्मक अंग थे। उन दोनों वैज्ञानिकों की अपूर्व मेधा के चमत्कारों से विश्व सुपरिचित है। अतः हम उनका पिष्ट-पेषण करना नहीं चाहेंगे। केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह युग प्राचीन भारतीय विज्ञान का स्वर्ण-युग था तथा इसमें दशमलव प्रणाली तथा शून्य जैसे अत्यन्त आवश्यक आविष्कार भी हुए थे। अब से लगभग १५०० वर्ष पूर्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक (जिनके नाम पर भारत का प्रसिद्ध उपग्रह छोड़ा गया है) 'आर्य भट्ट' ने, उन गुरुत्वा कर्षण शक्ति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था, कालांतर में जिनका श्रेय समाज की उपेक्षा के कारण सर आइजक न्यूटन को प्राप्त हुआ। महर्षि 'कणाद्' ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक वस्तु छोटे-छोटे कणों से मिल कर बनी है जिन्हें परमाणु कहते हैं।

इस प्रकार लगभग १५०० वर्ष पूर्व तक तो भारतीय विज्ञान में बहुत उन्नति हुई, परन्तु विदेशियों के आक्रमणों

से धीरे-२ सब कुछ नष्ट होता गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ हमारे देश में फिर आधुनिक विज्ञान की प्रगति का युग प्रारम्भ हुआ। अनेक नवीन भारतीय वैज्ञानिकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन आविष्कारों द्वारा देश की भलाई में लगा दिया। इन वैज्ञानिकों का लोहा पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों को भी मानना पड़ा है।

हमारा देश आज दो महान् वैज्ञानिकों के प्रति विशेष रूप से ऋणी हैं। ये दो वैज्ञानिक हैं—डा० जगदीशचन्द्र बसु तथा प्रफुल्लचन्द्र राय। इन्हीं दो वैज्ञानिकों ने भारत में आधुनिक विज्ञान की आधार-शिला रक्खी। डा० जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति विज्ञान में कुछ ऐसे प्रयोग किये, जिनसे पौधों में जीवन की बात सिद्ध हुई। उन्होंने विद्युत चुम्बकीय तरंगों का भी आविष्कार किया था। परन्तु देश के परतन्त्र होने के कारण उसका श्रेय 'मार्कोनी' को प्राप्त हुआ।

हमारे देश के एक महान् वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन हैं, जिन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला था। वे विश्व प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री तथा लन्दन की रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष भी थे। उन्होंने ध्वनि तथा वाद्य-यन्त्रों पर भी असाधारण प्रयोग किये। किन्तु उन्होंने प्रकाश के क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की उस उन्नति का चरमोत्कर्ष 'रामनप्रभाव' के सिद्धान्त के रूप में विश्व के समक्ष आया। अन्य भौतिक शास्त्रियों ने भी हमारे देश में विज्ञान का अभूतपूर्व प्रसार किया, जिनमें स्व० प्रो० मेघनाथ साहा, स्व० ठा० के. एस. कृष्णन् तथा श्रीमान् डी. एस. कोठारी हैं।

गणित शास्त्र के क्षेत्र में भारतवर्ष के 'रामानुज' का नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने असाधारण प्रयोगों के आधार पर भारतीय प्रज्ञा की श्रेष्ठता निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दी है। हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं से सम्बन्धित अनेक समस्यायें हैं, जिनके लिये आँकड़े आदि इकट्ठे करने पड़ते हैं। यह कार्य प्रसिद्ध अंक-शास्त्री प्रो० पी० सी० महाजन तथा उनके साथियों ने अत्यंत सफलता पूर्वक किया।

पाइथागोरस की प्रमेय भी, जिसके द्वारा गणित-शास्त्र में नवीन उपशाखाओं को विस्तार मिला, भारत में ही अन्वेषित की गयी थी। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि पाइथागोरस ने भारत के वैज्ञानिकों का सान्निध्य भी प्राप्त किया था। बहुत सम्भावित है कि भारतीय ग्रन्थ पुस्तकालयों के क्षरण के साथ ही नष्ट हो गये हों और पाइथागोरस के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ उसके देश में सुरक्षित रह सके हों। ग्रन्थों के लोप का एक बहुत बड़ा कारण मुस्लिम तथा अन्य जातियों के आक्रमणों का निरन्तर होते रहना है। अन्तरिक्ष-शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी बहुत सीमा तक पहले हमारे वैज्ञानिकों ने ही कर दिया था। 'सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करती है' तथा 'पृथ्वी गोलाकार है' इत्यादि नियमों के अविष्कार का श्रेय भी भारतीय वैज्ञानिकों को ही है। कहीं-२ तो वायुयान तथा टेलीविजन आविष्कार के संकेत भी प्राप्त होते हैं।

भारत में परमाणु-शक्ति का केन्द्र बाम्बे के पास स्थित 'ट्राम्बे' में है। तारापुर परमाणु संयत्र-केन्द्र भी बहुत अधिक महत्व रखता है।

रसायन के क्षेत्र में डा० प्रफुल्लचन्द्र राय का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है वह हिन्दू रसायन-शास्त्र के पुर्नद्रष्टा थे। शासन के क्षेत्र में हमारे स्व० प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू को विज्ञान में बड़ी रुचि थी। श्री नेहरू ने १९५८ में भारत सरकार की राष्ट्रीय वैज्ञानिक नीति बनाई थी। इस नीति के अनुसार भारत सरकार ने घोषणा की कि हर सम्भव साधनों से हर क्षेत्र में—विशुद्ध, व्यावहारिक तथा शैक्षिक प्रगति करने का प्रयत्न किया जायेगा। इसके साथ ही भारतीय विज्ञान में प्रगति के नवीन आयामों का स्थापन हुआ।

इस प्रसंग में प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने विज्ञान और वैज्ञानिकों के महत्व पर अच्छा प्रकाश डालते हुये कहा था—

"आधुनिक संसार विज्ञान का संसार है जीवन के जिस क्षेत्र का भी निरीक्षण करते हैं हम देखते हैं कि हम विज्ञान की सहायता के बिना नहीं रह सकते। हमें उच्च योग्यता वाले वैज्ञानिक बनाने है, जो किसी भी विदेशी वैज्ञानिक से टक्कर ले सकें। हमें ऐसे वैज्ञानिकों की हजारों में जरूरत है तभी हमारा देश प्रगति कर सकता है।"

इस प्रकार हम यह सकते है कि हमारा विज्ञान पूर्णतया परिपक्व तथा सुबद्ध है। उसका प्राचीन इतिहास जहाँ अत्यन्त कौतूहल-वर्धक हैं, वहीं वर्तमान में उसकी प्रगति चरम सीमा पर है। केवल एक बात जो खटकती है वह यह कि भारतीय बुद्धि धीरे-२ भौतिकता की ओर बढ़ने के कारण विकसित देशों की सम्पत्ति बनती जा रही है। इसके लिये जब तक प्रभावी कदम नहीं उठाये जायेंगे तब तक भारत को पुनः जगत्-गुरु के पद पर प्रतिष्ठित करने का स्वप्न नहीं देखा जा सकता है।

रघुवंश महाकाव्यस्य त्रयोदश सर्गस्य कथासारम्

अतुल रस्तोगी नवम 'क'

[महाकविना कालिदासेन विरचिते रघुवंश काव्ये सन्ति द्वाविंशः सर्गाः। अस्मिन् लेखे वर्णितः त्रयोदश सर्गस्य सारः पठनीयः।]

सन्त्यनेके कवयः सुरगिरायाम् संस्कृत भाषायाम्। तैरनैकानि महाकाव्यानि खण्डकाव्यानि गीतिकाव्यानि नाटकानि लिखितानि। तेष्वेकोत्तमोसरस्वत्याः वरदपुत्रः महाकविः कालिदासः येन इक्ष्वाकुवंशनृपतीनाम् गाथामवलम्ब्य रघुवंशमहाकाव्यम् विरचितम् प्रस्तूयतेऽत्र तस्यैव त्रयोदश सर्गस्य कथा-संक्षेपः।

मर्यादापुरुषोत्तमो रामः राक्षसराजं रावणं हत्वा सीतया, प्रियभ्राता लक्ष्मणेन कपीश्वर सुग्रीवेन विचक्षण-विभीषणेन च सह पुष्पक नामकं विमानमारुह्य अयोध्याम् प्रति प्रस्थानं करोति।

रामचन्द्रः मार्गे सीतां प्रति तत्रस्थानानाम् मनोरमं वर्णनं कुर्वन्ति। पूर्वं सः समुद्रस्य, तस्य कूलस्य, वायोः मेघस्य च आकर्षकं वर्णनं करोति। अनन्तरं सः जनसम्माने मुनिभिः पुनर्निर्मितानां आश्रमानां, रावणस्य हरणे सति सीतायाः नूपुर प्राप्तिस्थानस्य, माल्यवान् पर्वतस्य पम्पासरोवरस्य वर्णनं करोति।

रामचन्द्रः तदनंतर गोदावर्याः, पञ्चवट्याः, अगस्त्याश्रमस्य, शातकर्णि मुनेः पञ्चासरः नामकस्य सरोवरस्य सुतीक्ष्ण मुनेः आश्रमस्य, शरभङ्गाश्रमस्य चित्रकूटपर्वतस्य, मन्दाकिन्याः नद्याः, पर्वतस्य, निकटवर्ती तमाल वृक्षस्य, अत्रिमुनेः तपः स्थानस्य गंगायाश्च वर्णनं करोति।

रामचन्द्रः प्रयागवर्णनप्रसङ्गे गंगायमुनयोः सङ्गमस्य रुचिकरं वर्णनं करोति। शृङ्गवेरपुरस्य वर्णनं कृत्वासरयू नद्याः वर्णनं करोति।

हनूमता रामस्यागमनं ज्ञात्वा भरतः गुरुवशिष्ठेन, मन्त्रिगणैः सेनाभिः च सह स्वागतार्थमायाति। रामचन्द्र तेन सह मिलापकर्तुम् विमानात् अवरुह्य वशिष्ठं प्रणम्य अर्घ्यस्वीकृत्य भरतं आलिङ्गय कुशलप्रश्नैः मन्त्रिणः अनुगृह्णन्ति। रामचन्द्रः भरत सुग्रीवस्य विभीषणयोश्च परिचयं यच्छति। लक्ष्मणं भरतः आलिङ्गति।

रामचन्द्रस्य आज्ञया सुग्रीवादयः वानराः मानवशरीरं धृत्वा विभीषणश्च अनुचरैः सह रथमारोहंति। तदनंतरं रामचन्द्रः भरतः लक्ष्मणाभ्याम् सह पुनरपि विमानमारोहन्ति। तत्रैव भरतः स्वभ्रातृणां प्रणयन्ति। रामचन्द्रः तत्रैव अनुचरैः निर्मिते उपवने निवसति।

बाण-कृत कादम्बर्याः सारम्

—आशुतोष शर्मा दशम 'क'

धन्योऽयम् भारत देशः, यत्र समुल्लसति जनमानस पावनी भव्यभावोद्भाविनी शब्दसंदोह प्रसविनी सुरभारती सन्त्यनेके कवयः लेखकाश्च तस्याः वाङ्मये, तेष्वेकों वाणाख्यः लेखकः, पठन्तु तस्य कृतेः कादंबर्याः औपन्यासिकी कथा अस्मिंल्लेखे ।

कवेः कृतः काव्यमित्यभिधीयते । काव्यं तु द्विधा भवति । दृश्यं श्रव्यं चेति दृश्य । काव्येषु नाटकानि श्रव्य काव्यम् तु पुनः त्रिधा भवति । गद्यं पद्यं चम्पू चेति । पद्ये तु कवयः सौकर्येण चारुताम् प्रकटयन्ति । किन्तु गद्ये त्विदं दुष्करम् दृश्यते । अतोहि उक्तम् संस्कृत साहित्ये यत् "गद्यं कवीनाम् निकषम् बदन्ति ।" सन्त्यनेकाः सहृदयानन्द कराः कथाः परम् यथा कादम्बरी जनानाम् चित्त चञ्चरीकम् मोहयति न तथाऽन्याः । समस्त कादम्बरी काव्यम् एका चित्रशाला वर्त्तते । अस्य कुंज वनस्य वीथिकायाम् नूतनानाम् वर्णानाम् अनेकाः लताः विकसिताः सन्ति । प्रलोभनीयानाम् अंशानामपि बाहुल्यम् दृश्ययेत । अतोहि भूषणमहस्य इदम् कथनं प्रत्येकस्य सहृदयस्य विषये सार्थकत्वं वहति ।

"कादम्बरी रस भरेण समस्त एव,
मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम् ।"

अन्यच्च "कदम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते ।"

कादम्बरी वाण भट्टस्य किं वा संस्कृत-साहित्यस्य सर्वोत्कृष्टा गद्य रचना वर्त्तते । तस्या कथा सारनिदस्मितः

विदिशाभिधायाः राजधान्याः राजा शूद्रकस्य सभामध्ये एका चांडाल कन्या स्व परम् मेधाविनम् शुकमर्पयति । शुकनादेन विंध्यारण्ये स्व जन्मतः प्रभृति महर्षि जबालि अश्रामं यावत् वृत्ता त श्रूयतं । जाबालिना शुकः स्व पूर्व जन्मनो वृत्तान्तम् श्रृणोति । जाबालिना वर्णितः शुकस्य पूर्वजन्म वृत्तान्तः अयमासीत्—

उज्जयिन्याः राजातारा पीडः रानी विलासवती च द्वावेव तपसः महिम्नः चन्द्रापीडः नामकं पुत्र रत्नम् प्राप्तवन्तौ । विद्याध्ययनस्य समाप्तौ राजकुमारः चन्द्रापीडः स्व पितुः सचिवस्य शुकनासस्य पुत्रेण स्वामिना मित्रेण वैशम्पायनेन सार्धम् दिग्विजयाय निर्गतवान् । एक दासः स्व आत्मानं अश्वं इन्द्रायुमृम् आरूह्य एकम् किन्नरयुगलम् अनुकुर्वन् अच्छोदनामकं एकम्र मणीयम् सरोवरमागतवान् । तत्र राजकुमारस्य महाश्वेता नामकीं एका गान्धर्व राजकन्या आसीत्, यस्याः हृदये पुण्डरीक नामकम् तपस्विनमवलोक्य त प्रति प्रेमाङ्कुरः उत्पबोऽभूत् । परम् सम्मेलनात् पूर्वम् एव पुण्डरीकस्य मृत्युः स्मरपीडया जाता । एतस्मिन् महाश्वेता तपस्विन्याः वृतं गृहीत्वा भावि मिलनस्य आशायाम् आच्छोद सरोवरस्य तटे वसनम् प्रारभत् । महाश्वेतायाः सखी कादम्बरी अपि कौमार्य ब्रत धारणम् निश्चितम् । महाश्वेता चन्डापीडकेन सह कादम्बरी प्रबोधनाय याति प्रथम साक्षात्कारेण एव द्वावेव परस्परम् अनुरक्तौ संजातौ । परम् उज्जैननगरात् पितुः आहूते जाते चन्द्रा पीडः त्वरितम् एव पर पतति । सः वैशम्पायनम् सेनया सहैव परावर्त्तनाय कथयति । यावत् वैशम्पायनः बहुकाले नागच्छति तर्हि चन्द्रापीडः तस्यन्वेषणाय आच्छोद सरोवरम् गच्छति । तत्र महाश्वेता तम् कथ-

यति यत् वैशम्पायनः मयि आसक्तो जातः मत् सः प्रेम प्रस्ताव कर्तुमारभत अतः अहम् तस्मै शुक भवनस्थ शापम् अयच्छम्। स्व प्राण प्रियस्य सुहृदः एताहृशाम् अन्तम्श्रुत्वा चन्द्रापीडोऽपि मृत्युं गतः। एतस्मिनेवावासरे कादम्बरी घटनास्थलम् याति, स्व स्नेहिनं निष्प्राणेति ज्ञात्वा प्राणान् त्यक्तुम् उद्यता भवति। परम् एका आकाशवाणी तं एतम् कर्त्तुम् निवारयति अश्वासयति च यत् महाश्वेता कादम्बर्ययोश्च स्वास्व स्नेहिभिः संयोगः निकट भविष्ये अवश्यम्भावी वर्त्तते। अत्र जाबालि मुनेः कथा समाप्ताभवति।

तदा शुकः शूद्रकम् अवदत् यत् जाबालिना स्व पूर्व जन्म वृत्तान्तं श्रुत्वा मम हृदये महाश्वेतां प्रति स्व पूर्व प्रेम्णः स्मृतिः जाता आतुरोभूत्वा चाहम् आश्रमात् उदपतम्, किन्तु अनया चाण्डाल कन्यया गृहीत्वाऽहम् पिञ्जरे निक्षिप्तः। अनयैव अहम् भवते सर्मपितः। अस्य अतिरिक्तम् अहम् किञ्चिदपि न जानामि। तदा चाण्डाल कन्यया शूद्रकं निवेदितवती यदहम् पुण्डरीकस्य जननी लक्ष्मीरस्मि अधुना च अस्यः भवतः च शापस्य अवधिः समाप्तप्राया अस्ति। एतस्मिन् शूद्रकस्य हृदये प्रेमाङ्कुरः कादाम्बरीं प्रति प्रादुर्भूत्। त्वरितमेव तस्य मृत्युः जाता चन्डापीडः पुर्नजीवितो अभूत्, चाण्डालकन्या यं शापं प्रति संकेतित वतीतस्य रहस्यम् इदम् अस्ति—

महाश्वेतायाः स्नेहीपुण्डरीकेन चन्द्रम्सम पुनः पुनः जन्मग्रहणाय शापः दत्तः। चन्द्रमसापि पुण्डरीकाय एतादृशैवशापः दत्तेः। एतेषाम् शापानाम् कारणेनैव चन्द्रमा-चन्द्रापीड रूपे पुण्डरीकः वैशम्पायनं रूपे जन्म गृहीतवन्तौ। चन्द्रापीडः वैशम्पायनः च पुत्रः शूद्रकस्य शुकस्य च रूपेण जन्म ग्रहीतवन्तौ। शुक कथा समाप्तौ शापावधिरपि समाप्ता। अनन्तरं पुण्डरीक महाश्वेतयोः चन्द्रापीडः कादम्बर्योः सुखद् मिलनम् जातम्। ते च अवर्णनीयमानन्दमनुभवन्तः सुखेन अवसन् इति।

गु रु - द क्षि णा

—राजीव बाजपेयी, नवम 'क'

[प्राचीन कालस्य शिष्यानामचरणैः आधुनिकैः छात्रैः सद् शिष्यस्य शिक्षा ग्रहणीया। अस्त्यमेकमुदाहरणयत्र]

प्राचीन कालादद्यावधि अध्ययनअध्यापनं प्रचलितम्। पुराकाले अध्ययनोपरान्ते कृतज्ञं प्रकटयितुम् छात्राः गुरुभ्यः दक्षिणां अयच्छन्। यद्यपि अर्वाचीना अन्तेवासिनः अध्ययनकाले गुरूणाम् परिचर्यामपि कृतवन्तः परं दक्षिणायै अपि निर्बन्धम् कुर्वन्तः।

एतादृशेषु गुरुभक्ति परायणेषु कृतज्ञेषु शिष्येष्वेकतमः कौत्सनामाख्यः शिष्योऽभून् यः श्री वरतन्तोः समीपे-उषित्वा चतुर्दशवर्षान् यावत् चतुर्दश विद्याः अधीतवान्। अध्ययनोपरान्ते सः गुरुं प्रति दक्षिणायै कथयति। एतस्मिन् गुरु तस्य अकिञ्चनीयवस्थां विज्ञाय तेनकृतां सेवामेव गुरु दक्षिणां मन्यते किन्तु सत्छात्र इव सः गुरोः ऋणाद् मुक्ति कामयते। स तु पुनः निर्बन्धं करोति। तस्य निर्बन्धेन सः कोपाविष्टो भवति। क्रोधावेशेन सः तस्मै चतुर्दशसहस्र स्वर्ण मुद्रायै कथयति।

पूर्वः सः विचारयति यत् अहं निर्धनः कुतः सतं धनं प्राप्स्यामि परं किञ्चिक्षणानन्तमेव सः स्मरति राजा रघुणा विदुषां समादरो क्रियते। अतः मया तत्रैव गन्तव्यम्। आशावान् भूत्वा सः त्वरितमेव रघोः राजधान्याम् प्रति गतौ। द्वारपालेन निवेदितः यत् द्वारे कश्चिद् भूसुरवटुः भवन्तुं दिदृक्षस्तिष्ठति। परं सौम्यः रघुस्ते करितवान् राजधान्याः अन्तः प्रकोष्ठे। तत्र तस्य स्वागताय मृण्मय पात्रेषु जलमानीतम्। तानि मृण्मयपात्राणि दृष्ट्वा पूर्व सः हताशोऽभूत् यत् अधुना रघोः कोशे धनं न विद्यते यतो हि अनेन विश्वविजति याने सर्व धनं प्रायोजितम्। कौत्सः राजानम् स्वोद्धेश्य वक्तुं संकोचम् करोत्। पर रघुरकथयत् नैवं ब्राह्मण कुमारे! भवाम् लेशमात्रमपि न संकुचनु। रघोः कोशे धनस्यभावो विद्यते किन्तु हृदये दानशीलतायाः भुजयोश्च वीरतायाः अभावो न विद्यते।

एतस्मिनन्तरे रघुः सेनापति आहूय अकथयत् यत् एका समस्या पुरः आगताः। चतुर्दशसहस्रस्वर्ण मुद्राणां याञ्चा। अतः सेनां सज्जयतु कुबेरं प्रति आक्रमणाय। युद्धभेरी शब्दं चकार शब्दानुसारेण रघो प्राङ्गणे धनस्य वर्षा जाता। प्राङ्गणं तु पूर्णरूपेण परिपूर्णं ज्ञातम्। रघुः कौत्सं अहूयाकथयत् यत् गृहणातु भवान् यथेच्छं सर्वमपि धनम्। कौत्सेन पूर्वं तु गणितम् यदा संख्या पूर्णा जाता तदा तेन धनस्य राशिः व्यक्ता यतो हि सः लुब्धो नासीत्। गुरुदक्षिणायै सः धनं वाग्छतिस्म्। अतीवानुकरणीय शिष्यः सः आसीत् आधुनिकैः छात्रै यतोहि सः कृतज्ञः, गुरुभक्तः विद्वानं, मृदुभाषी,व्यवहार पटुः प्रभृति उत्तमगुणैः भूषितौः आसीत्।

रघोः समीपात् चतुर्दशसहस्रस्वर्णमुद्राः नीत्वा गुरु समीपे गत्वा तस्य समक्षे प्रस्तुताः। गुरुरपि आश्चर्य पूर्णः आसीत् यत् न ज्ञातम् कुतः एतेन इदं धनं लब्धम्? परं तस्य कृतज्ञता नामकेन गुणेन सः अतिप्रसन्नः आसीत् ईश्वरकामये यत् एतादृशाः गुरवाः शिष्याः एव भवेयुः ये आवश्यकता अतिरिक्तं धनं न वाच्छेयुः।

"पूर्वं प्रतापभानुः पश्चाद्रावणः"

–अनिरुद्ध सिंह, नवम 'ख'

[मानवः स्वकर्मभिरेव फलं प्राप्नोति । अस्त्येकमुदाहरणम् यदस्मान् संबोधयन्ति कुकर्मकरणात् ।]

पुरा कैकय देशे सत्यकेतु नाम नृपः राज्यमकरोत् । तस्य प्रतापभानु नामकः एकः पुत्रः आसीत् । पितुः मृत्योरनन्तरं प्रतापभानुरेव राज्ये अभिषिक्तः । एकदा राज्ञः हितचिन्तकः सचिवः धरमरुचि राज्ञे परामर्श अददात् यत् "सः सर्वान् नृपान् स्वाधीनं कुर्यात् ।" तस्य परामर्शानुसारेण राजा सेनां नीत्वा एकैकशः राज्ञः ज्ञातुमारभत् । प्रतापभानुना सर्वे राजानः स्वायत्री कृतःपरं वासुदेव नृपः पराजय न स्वीकृतवान् । सः विंध्याचलपर्वतं गत्वा तत्र कुटीरं निर्माय वस्तुं प्रारभत् ।

एकदा नृपः प्रतापभानु आखेटाय वनमगात् । वने राज्ञा एकोमृगो दृष्टः । नृपः तं अनुकर्तुमारभत् । मृगः धावन् राजानम् विंध्याचल पर्वतमनयत् । सः मृगः राजानम् एकं कुटीरमनयत् । नृपोऽपि तामेव दिशामधावत् । परं नृपः तस्याम् कुट्याम् एकेन साधुवेशेन तपः कुर्वन् मानवं दृष्टवान् । सः साधु राजानं वीक्ष्य अवनत् "त्वं कुतः आगतोऽसि ।" राज्ञा सर्वं वृत्तं कथितम् । राज्ञः वृत्तां श्रवणेनैव सः कपटवेषः वासुदेवः राजानम् अज्ञायत् । सः राजानम् अवदत् यत् त्वम् अस्याम् रात्रौ अत्रैव तिष्ठ । प्रातःकाले अहम् त्वां तव राज्ये प्रेषयिष्यामि । इदं श्रुत्वा राजा एतं स्वीचकार ।

सः मानवः राजानं अवदत् अहं एतादृशीविद्यां जानामि यया त्वमपि सर्वान् विप्रान् स्वाधीनान् कर्तुमर्हसि । राजा तां विद्यां कथितुम् अवदत् । साऽपि अकथयत् यत् चेत् त्वं मम विषये किञ्चिदपि न कथयिष्यसि । तर्हि अहं त्वां तां विद्यां कथयिष्यामि । राजा तं स्वीचकार । सोऽवदत् यदहं एकाकी भोजनं रचयिष्यामि त्वं च सर्वान् विप्रान् तदेव भोजनं भक्षय ।

इत्थं नृपः सर्वान् विप्रान् आमन्त्रयत् । एव तेनैकाकी भोजनं निर्मितम् । तेन भोजने पिशितम् अपि मेलितम् । यदैव भोजनं विप्रेभ्यः दत्तं तदैव आकाशवाणीजाता यत् भो ! विप्र "इदं भोजनं मा भक्षय" अस्मिन् पिशितं सम्मिलितं वर्तते । इदं श्रुत्वा सर्वे विप्राः क्रोधावेशेन राज्ञं शापं अददुः "यत् त्वं पुनर्जन्मनि राक्षसकुले उत्पन्नः भविष्यसि" । स एव प्रतापभानुः पुनर्जन्मनि रावणः अभूत् ।

चन्द्र - यात्रा

—संजय कुमार श्रीवास्तव, दशम 'क'

[संस्कृत भाषामाध्यमेनापि आधुनिक विषय-ज्ञानम् भवितुं शक्यते। पठन्तु अस्मिन् लेखे चन्द्रयात्रायाः रोचकवर्णनम्।]

'नास्ति किमप्यसाध्य श्रमवताम्' इति विचार्य वर्धितोत्साहाः मानवाः स्वबुद्धि बलाद् दुष्कराणि कार्याणि कर्त्तुं दुर्धर्षा च प्रकृतिमपि जेतुं नवनवानि दुःसाध्यकर्माण्यपि समाचरन्ति। न केवलं भूमण्डले एव किन्तु अन्तरिक्ष मण्डलेऽपि विचरितुं तत्रस्थग्रहानपि जेतुं यतन्ते। तदर्थं सहस्रांशो वैज्ञानिकाः रात्रिन्दिवं महता श्रमेण चेष्टमानाः दृश्यन्ते। अस्मिन्नेव उपक्रमे ते चन्द्रलोकमपि जेतुं प्रायतन्त। तत्र च ते सफलतामपि प्राप्नुवन्।

१९६९ खृस्ताब्दे जुलाई मासस्य १६ तारिकायां नील आर्मस्ट्रांग, माइकेल कालिन्स एडविन एलड्रिन नाम्नः त्रयोः वैज्ञानिकाः अपोलो—११ नामकेन यानेन चन्द्रमसं प्रस्थिताः। तत्र चन्द्रयानं मूलयानं पृथक भूत्वा १९६९ खैस्ताब्दे जुलाई मासस्य २१ तारिकायां चन्द्रवासर एव भारतीय समयानुसारं पादोनद्विवादनवेलायां नील आर्मस्ट्रांग एडविन एलड्रिन महोदयाभ्यां सह चन्द्रमसः निर्जने प्रदेशे शान्तिसागरेऽवातरत्। तदानीं माइकेल कालिन्स महोदयः मूलयानोपर्येव स्थित्वा चन्द्रमसः परिक्रमां कुर्वन्नासीत्।

ततश्चन्द्रतलं अवतीर्य आर्मस्ट्रांग महोदयैः पृथ्वीं प्रति संदेशः प्रहितः—"अस्माकं चन्द्रयानं सकुशलम् चन्द्रतलेऽवातरत्। कुशलिनो वयं च। न कापि चिन्ता कार्या। पुनश्च चन्द्रतलात् पृथिव्याः वर्णनं कुर्वन्नाह—"इतः पृथ्वी अति महती चमत्कृता दिव्या च दृश्यते। चन्द्रतले तु स्थाने—स्थाने महती शिलावलोक्यते। कठोरश्च चन्द्रतलोऽत्र।" तदनन्तर एडविन महोदयः अभाषत्—अतीव रमणीयं दृश्यते। सर्वमपि वस्तु रमणीयं दृश्यते। इतोऽनातिदूर एव शोभते चित्रित शिला-तलम्। सूर्यस्य प्रकाशे चन्द्रमृत्तिका चन्द्रशिला च दीप्यते।"

ततः किञ्चिद् विश्राम्य भुक्त्वा च यांत्रिकं नेपथ्यं परिधाय जीवन रक्षिकां रजतपेटिकां च पृष्ठो परिनिधाय आर्मस्ट्रांग महोदयः एव प्रथमं चन्द्रतले स्वपदं न्यधात्। स च वामपादं चन्द्रतले निधाय अकथयत्—

'यद्यपि मानवस्येदं लघु कार्यम् तथापि मानवतायाः कृते इदं महत्कार्यं विद्यते। स च द्वाभ्यां हस्ताभ्यां चन्द्रयानं गृहीत्वैव कियद्दूरं प्राचलत्। तदनन्तरं एलड्रिन महोदयोऽपि चन्द्रयानात् बहिरागच्छत्। ततश्च द्वावेव महापुरुषौ कियत्कालं तत्रोषित्वा यन्त्रसहाय्येन ततो धूलिं पाषाणादिकञ्च नीत्वा पृथ्वीं प्रत्यावृत्तो। तत्र च एक धातुफलकं स्थापयामास यत्र लिखितमासीत्—अत्रैव १९६९ खृस्ताब्दे जुलाई मासे पृथ्वी तलादागत्य

मानवः प्रथमं चन्द्रतले पदं न्यधात् । सर्वेषां मानवानाम् शान्ति कामाः वयमत्रागताः । तस्मिन् फलकोपरि त्रयाणाम् अन्तरिक्ष-यात्रिणां अमेरिकायाः राष्ट्रपतेः निक्सन महोदयस्य च हस्तक्षराणि सन्ति । ताभ्याञ्च तत्र भूकम्पयत्राणि लेसर परावर्तक यन्त्राणि स्थापितानि ।

तदनन्तरं ईसवीयँ वर्षे नवम्बर मासस्य १४ तारिकायां चार्ल्स कोनरेड एलनबीन रिचर्ड,एफ० गोर्डन महोदयाश्च अपोलो-१२ नामकेन चन्द्रयानेन पुनः चन्द्रलोकं गताः । तेषु चार्ल्स कोनरेड एलनबीन महोदयौ तद् मासस्य १९ तारिकायां चन्द्राभूमावतीर्य तत्रौपकरणानि स्थापयित्वा पुनश्च ततः प्रस्तरादिकम् आनीय रिचर्ड गार्डन महोदयेन सह २५ दिनांके पृथ्वीं प्रत्यागतौ ।

पुनश्च अपोलो-१५ चन्द्रयानेन १९७१ खृँस्ताब्दे चन्द्र यात्रिणः फरवरी मासस्य १ तारिकायां चन्द्रलोकं प्रतस्थुः । एवमेव १९७१ ईसवीयेऽगस्त मासे अपोलो–१५ चन्द्रयानेन चन्द्रलोकं गत्वा यात्रिणो मोटरयानेने चन्द्रधरातले भ्रमणे समर्था अभवन् । तत्र चन्द्रयात्रा श्रृंखलासु अपोलो-१६ नामकस्य यानस्य चन्द्रयात्रा मानवानाम् अन्तिम चन्द्रयात्रा आसीत् । अधुना तु वैज्ञानिकाः तत्र प्रयोगशालां स्थापितुं सयत्नाः सन्ति ।

तत्र चन्द्रलोके जलं वायुश्च वर्तते तत्र तु धूलिः पाषाणमण्डलानि विवराणि च सन्ति । चन्द्रतलस्तु कठोरः तत्रत्या धूलिनां तु अन्वेषणे-परीक्षणे च रताः सन्ति । इयं च सफलता मानवानां साहसस्य, धैर्यस्य, परिश्रमस्य, विज्ञानस्य च महदुपलब्धिरस्ति ।

❖

***

आइये ! कुछ तथ्य और एकत्र करें........

—संकलन-कर्ता

—राजीव गुप्त सप्तम 'क'

१. भारतीय वायुसेना की स्थापना ८ अक्टूबर १९३२ में हुई ।

२. मुगल साम्राज्य का अन्तिम बादशाह बेहादुरशाह जफर था जिसका जन्म २४ अक्टूबर १७७५ को हुआ व मृत्यु १८६२ में हुई ।

३. संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा की प्रथम महिला अध्यक्षा श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित थीं ।

४. भारतीय स्थल-सेना के प्रथम फील्ड मार्शल एस.एच.एफ.जे. मानेकशा हैं ।

५. वायुसेना के प्रथम भारतीय अध्यक्ष सुब्रत मुखर्जी थे ।

६. प्रथम भारतीय नोबल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर थे ।

Changing Ways of Democracy

—**Mukesh Nigam, 'X A'**

Young hearts do not only act as on lookers to the changing situations, but observe and comment upon—as you will note it here.

"Democracy is the government of the people for the people and by the people." Abraham Lincon.

This definition was kept aside and emergency was declared in India by president to fulfiill faithfully the whims and fancies of Mrs. Indira Gandhi. The democratic Prime minister was changed into the self appointed dictator. According to Congress government 25th June 1975 the day which must be written in golden words in the history of India. But really the declaration of emergency was only to save the chair of the Prime minister. Then the Congress rulers told that the emergency was a boon for India. As a result of a boon all the opposite party leaders were mercilessly thrown into the prison the two blades of scissors—MISA and D. I. R. were catching the real Democrates, petriots, the real sons of Mother India. The head of the government was handling all the powers to meet her own ambitions. The dictatorship was dancing in the shape of emergency. Our fundamental rights were suspended. Thus discipline was maintained at the point of gun. People could not express their ideas freely or criticise the government Only the flatterers were successful rulers during that period.

In the last moment of emergency the second sun, I mean to say that Sanjay Gandhi was shining high and throwing its light on the holy ground of India. In that hot light all the political parties were being burnt. No body could know where our leaders were hidden. All the people of India were enjoying the fruits of democracy, without fundamental rights.

Suddenly in December 1976 the second sun thought that the ground of India had grown fertile and his planets I mean to say that the companions of Mr. Sanjay Gandhi, would reap a good crop. Meanwhile God blessed the Second India (Second India means Mrs. Gandhi because Barua Said, "India is Indira and Indira is India.") She declared election to be held in February 1977 The political leaders were set free. Sri Jai Prakash Narain who was parole freed when he was on death bed, brought five parties under one flag. The name of the new party was JANATA PARTY.

Janata recognised this new party and rejected the Second Son and the Second India. After 21 march, the second sun disappeared

in the vast sky over Second India. People of India felt comforted in the light of real sun which arose in the sky of India. Janata government has been ruling in India now-a-days. At first our leaders of Janata use to tell that we had not obtained real freedom in. 1947. But really we have achieved complete freedom now in 1977.

The definition of democracy was first changed by congress government in the emergency. Secondly the definition of domocracy has been changed by Janata rulers. But the definition of democracy must be never changed by any rulers. Rulers will be changed if they do not go the Janata way, Janata Party must learn from the past events and work according to the pledge taken, if they really want to be successful servants of the people of India.

STRANGE BUT TRUE

Mukesh Nigam, X 'A'

Rain producing trees :—These trees are found in. Indonesia. It is nature's wonder. The reason is very simple In the noon the rays of the Sun are very bright and warm. The trees absorb moisture from the atmosphere. When weather cools down the moisture appears on the leaves in the form of drops. These drops begin to fall and appear as if it is raining.

Trees showing anger :-These trees are fouud in "California". It is about 25 to 30 feet high. They express their anger by rustling.

Trees causing burning:-The trees are found in the dense forest of "South America". Its name is, "Mancheel" These trees produce a poisonous substance. When an animal or a human comes into touch with this substance, its body gets burnt.

OUR FAVOURITE LEADER

LAL BAHADUR SHASTRI

By—Daya Shanker *VIII 'A'*

[Lal Bahadur Shastri, a life of a devoted personality to country, reproduced by young writer—Editor]

On the 10th of January, 13 years ago, a tumultuous applause broke out, hundreds of cameras clicked and cine-cameras buzzed under the dome of the round hall of Uzbekistan's Government house in Tashkent. In the centre of the hall, under blinding spotlights stood Lal Bahadur Shastri, Mohammed Ayub Khan and Alexi Kosygin, firmly clasping each other's hands and smiling.

Hardly, a minute back, the Tashkent declaration had been signed and was being hailed as an important achievment.

Lal Bahadur, after attending a reception hosted by the Soviet premier Kosygin, retired to bed at 11-00 P.M., but felt uneasy. At 1·20 A.M., he had a bout of cough and walked a few steps to call his physician. Within a few minutes, at 1·32 A.M., he passed away after a severe heart attack.

The last message of peace that he gave to us through Sri Y. B. Chavan was : "We fought in this (Indo-pak) war with all our strength" Lal Bahadur proved that he was great in war, but even greater in peace and laid down his life for it.

Lal Bahadur was born on October 2, 1904 at Mughal Sarai in U. P. His father died when he was only a year and a half old. He was therefore, brought up by his maternal grandfather who arranged for his early education. He was in the college when Gandhiji gave the call for school and college boycott and Lal Bahadur threw himself into the movement. In 1921, he joined Kashi Vidyapeeth. He passed the Shastri course and came to be known as Lal Bahadur Shastri.

He got married to Lalita Devi in 1929. As dowry he accepted only a charkha and some yarn. When his father-in-law pressed for some more gifts, he said he would rather go back than accept any of them.

In 1925, he joined Lala Lajpat Rai's Servants of Peoples Society. He was assigned Harijan work in meerut. In 1928, he was asked to shift to Allahabad where he continued to do silent, yet constructive work. In the 'Quit India Movement' of 1942 Lal Bahadur was detained in Naini Central Jail. Certain extraordinary traits in him came out during his detention. While his co-prisoners tried to get many things smuggled into the Jail

with the connivance of the jail authorities, he scrupulously refused to touch any such item and was content with what was provided under the jail rules. Though he was given 'B' class, he used to share his rations with 'C' class prisoners. It is here that he translated the life of Madam Curie in Hindi.

Once he was visiting a city in U. P. When his train arrived, his compartment went past the group of local leaders and officials waiting for him with garlands. Lal Bahadur quietly alighted and made his way to the exit gate. An officious constable stopped him and shouted at him that he could not go until the Minister had left the station. A Person standing nearby whispered into the ears of the constable that he had stopped the police Minister himself. The constable laughed at it and said.—"This little man can not be our Police Minister" Lal Bahadur saw to it that no harm was done to the constable.

In 1951, Lal Bahadur went to Delhi as General Secretary of the Congress on summons received from Jawahar Lal Nehru who was then the Congress President. After the first general election in 1952, he was appointed Minister for Railways and Transport. He resigned from the Railway Ministership in 1956, taking constitutional reponsibility for the Ariyalur railway accident in which 144 persons died. Jawahar Lal Nehru, while accepting his resignation said, "No one can wish for a better colleague in any under-taking. Shastri is a man of highest integrity, loyalty, devoted to ideals, a man of conscience and a man of hard work.

After the second general elections in 1957, he again joined the central cabinet as Minister for Transport and Communications. A year later, he moved to the Ministry of Commerce and Industry. After the death of Pandit Govind Ballabh Pant in April 1961, he became the Home Minister. Here too he blossomed forth. His genius for untangling political knots and pouring oil over troubled waters found plenty of scope. He was confronted with troubles in Assam, Goa, Kerala, Punjab, Maharashtra and Mysore. Amidsts these problems he proved his mettle as an able admmistrator and statesman.

In the open durbars held at his residence people from all walks of life could meet him in the early hours of the morning. During the short span of 19 months that he was Prime Minister, the country passed through a period of severe stress and strain. He guided the destinies of the nation with strength, determination, wisdom and farsighted statesmanship.

He sought peace in the country, peace with her neighbours and peace throughout the world. His concept of peace, however, was one of peace with honour. He faced the challenge presented by Pakistan's attack in Kutch and Kashmir with courage ond fortitude that few had. The moment he was convinced that the army was required to go into action in defence of national intergrity, he did not allow indecision to cloud his vision. Whithin a few days he turned the tables on Pakistan.

From the very beginning of the hostilities Lal Bahadur spoke in a realistic but firm voice. Repeatedly, he declared that India was fighting a defensive battle and was prepared for peace. But Kashmir would not be

(See on page IV)

The young saint of India

By,—Anupam Trivedi VIII A

The great philosopher monk as envisaged by the youth—Editor

'He is an excellent student of philosophy. In all the German and English Universities there is no student so brilliant as he is.''

These were the words of a professor about an extraordinary intelligent boy, who later on as a young saint, dominated not only the hearts of Indians but also those of the people of the whole world.

Who was this extra-intelligent boy? Who was this young saint ?

It was none but the world famous figure Swami Vivekanand.

On the 12th January 1863 in the big city of Calcutta a child was born at the house of a distinguished advocate. The child gradually grew up under the loving care of his mother Bhuvaneshwari Devi and father Vishwanath Dutta. The child was given the name of Narendra Nath.

From early education up to university Narendra had been a remarkable personality among his colleagues. His excellent reasoning power, his eloquence was marked by his professors and by those who came in his contact. Narendra had love for spirituality from heritage. His mother told him stories from Ramayan and Mahabharat. So he used to devote his time in worship and meditation. Once when he was so much lost in meditation that he did not notice at all that a serpent opened its hood over his head; other boys shouted and warned him. But when the serpent went away and he was asked about it he did not know when the serpent came and when they shoutingly warned him.

There is a saying, coming events cast their shadows beforehand. This event shows that the seed of some divine mission had sprouted within him.

Now Narendra was in search of some real 'Guru' as guide who could water and bring up his spirit. At last he succeeded. He came in touch with Shri Ramkrishna Paramhansa a recognised super human soul. Narendra directly questioned the saint "Have you seen the God ?" and the saint replied—"Yes, I have" Narendra asked again "Can You show Him to me also ?'' and Swamiji replied "Yes, I can'' After this event Narendra dedicated him-self to the feet of this saint. Narendra now had become Swami Vivekanand. He dedicated his whole life to the service of whole humanity.

He went to America and England and put the ideals of Hindu religion before the foreigners. In the World Religions Conference he proved the Hindu religion to be the best of all the religions. Thus in foreign countries he again

re-established the lost glory of spiritual India. He returned to India and devoted his whole life to the service of the suffering humanity. He once said

"Our ancestors were great. We must first know what blood courses in our veins. We must have faith in that blood and out of that faith and consciousness of greatness, we must build India greater than what she has been."

Whatever Swamiji taught, the best to my mind is that we must focus our attention, energy and will power to the ideal, which is before us. This is the best duty and the surest path to success.

On the 2nd July 1902, Swamiji left us all weeping and wailing. Though he is not among us, yet he is still alive and will remain alive till humanity continues.

Not only India but the whole world owes an everlasting debt of gratitude to him and to his noble ideas. Even today when we remember him, the following lines of Long Fellow resound in our heart—

Lives of great men all remind us

We can make our lives sublime,

And departing, leave behind us

Foot prints on the sands of time.

(Contd from P. II)

the price for peace. The security council, with the help of these announcements, arranged a truce but complete reconciliation was not visible. Soviet diplomatic intervention was however, accepted by both the countries.

After all, the two leaders of India and Pakistan could iron out their differences and the nine-point Tashkent Declarattion was signed on January 10,1966. The news of this agreement was triggered and all the leading countries acclaimed it as a great triumph. But even before the ink dried on the paper of the Tashkent agreement, the atmosphere of Tashkent and of the world changed into gloom due to the sudden demise of Lal Bahadur Shastri. In Lal Bahadur Shastri's death, we have lost one of our finest leaders—a man of depth and humility, a leader of integrity and character, a patriot true and good. †††

'Small India'

—*Rahul Vashistha, 'X A'*

You have been surprised by the heading '*Small India.*' But there is nothing to be surprised- I am talking abut that 'Small India' which is also known as 'Hind Mahasagar kaa Moti.'

'Mauritius' which has population of 7 lakhs, is sometimes called as small India.

For the first time 'Dutch' came and settled there. Even today there is a stone in their memory, where they landed first.

The Dutch had named, it Mauritius on the name of their king Nasaus son's Moris.

We found a special type of bird 'Do-Do' here, which was a favourite dish of Dutch people. Untill 1681 because of excessive hunting, Do-Do, are now obsolete. And the Dutches have also stepped out of Mauritius.

In 1715 France captured Mauritius and named it 'Oil De France.'

Napolian Bonapart made it centre of his Navy during First World War. Some people of France started to grow sugar cane. There were no labourers but they can't live without growing sugarcane. English men took it's contract, and people of U. P. and west Bihar were taken away to Mauritius by saying that they would get good services there.

The stories of what happened to them would make stand hair of any emotionally sensitive man.

Kupip is a famous city of Mauritius, every field of Kupip has a rock on its side, which shows the hard working of those Indians. These rocks were the heap of stones, which were dug out from these fields.

Roads, which go by the fields are the only the source of transportation.

Sugarcane is the main produce of Mauritius. Nature and atmosphere is also favourable for it.

No body sucks the sugar cane there. I talked a man who had visited Mauritius, he told me that the same question he asked there. "Why don't you suck the sugar cane ?" The answer was "It is our international currency, if we chew it, what the country will eat ?" And said with a bit of smile. "How much we can chew when sugar cane is all around us ?"

There is social great equality. We

can find out its example by seeing prime minister's home. It is a very simple building, at the lower side there are shops. He goes to public and mixes in public as a simple citizen.

There, those industrialists who had set up industries of sugar and tea, should have money like a simple citizen . For this, prime minister sets up a factory of sugar and tea and glances about thin profits.

Nature has made it more beautiful. And why not ? When these people care so much of nature.

At one place the road had taken a curve which causes hurdle to motorists & this bent is there due to avoiding cutting of the trees.

Many people speak Bhojpuri there.

The customs of people of Mauritius are much similar to Indians. Indian festival are celebrated with great joy. Maha Shiva Ratri has it own importance.

Mauritius got its independence in 1968. On this tenth celebration of their independence day we send them our good wishes.

तरुण-नैवेद्य

तरुण भारती–एक विचार

समाज के विकास में जीवन्त योगदान प्रदान करने के लिए समाज के तरुण अग्रसर हों, निराशा की गहराइयों अथवा कल्पना लोक के आकाश-भवनों को त्याग कर यथार्थ और आदर्श का समुचित समन्वय करते हुये सधे हुये पाँवों से बढ़ते हुये अपनी सबल भुजाओं से अपने अभाव-ग्रस्त समाज-बन्धुओं को भी उठायें, उनमें देश-भक्ति की पयस्विनी का संचार करें, समाज के प्रति आस्था उत्पन्न करें—इस दृष्टि से ही हमने तरुण-भारती का गठन किया है।

किसी भी अच्छे कार्य में ईश्वर की सहायता मुक्त हस्त से प्राप्त होती है। उस सहायता के रूप में ही हमको मार्गदर्शन के लिये आदर्श देशभक्त एवं महान् चिन्तक माननीय बैरिस्टर नरेन्द्रजीत सिंह जी (कानपुर), सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं प्रेरणाप्रद कर्मयोगी श्रद्धेय पं० शिवशरण जी शर्मा (कानपुर) तथा आदर्श प्राचार्य एवं शिक्षा-क्षेत्र के सुप्रसिद्ध मनीषी आदरणीय श्री चन्द्रपाल सिंह जी (आगरा) ने हमको आगे बढ़ने की उत्साहप्रद प्रेरणा प्रदान की है।

संस्था का संविधान प्रकाशित कर हम आशान्वित हैं कि भविष्य में हमारे तरुण समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने में समर्थ हो सकेंगे।

इस संविधान का प्रणयन हमारे आद्य प्राचार्य मान्यवर श्री चन्द्रपाल सिंह जी ने बड़े परिश्रम-पूर्वक किया है।

संविधान

"तरुण भारती"

पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय,
कानपुर–२

नाम, परिभाषाएँ तथा स्थान—

१—(क) पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर-२ के पूर्व छात्रों के संगठन का नाम 'तरुण-भारती' होगा।

(ख) संविधान में आगे जहाँ भी विद्यालय शब्द आयेगा उससे तात्पर्य पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय, कानपुर ही होगा।

(ग) विद्यालय के पूर्व छात्रों से तात्पर्य उन्हीं छात्रों से है जो किसी समय विद्यालय में लगातार कम से कम एक सत्र अथवा वर्ष पढ़ चुके हैं तथा सदस्य बनते समय विद्यालय के छात्र नहीं हैं ।

(घ) तरुण-भारती का कार्यालय विद्यालय में ही रहेगा !

उद्देश्य—

२—(क) 'तरुण-भारती' का साधारण उद्देश्य है, विद्यालय के सभी पूर्व छात्रों को संगठित कर उन्हें एक-दूसरे के सम्पर्क में लाना तथा एक ही 'मातृ-विद्यालय' के छात्र होने के नाते उनका आपस में भाई-चारा स्थापित करना ।

(ख) 'तरुण-भारती' का विशेष उद्देश्य है विद्यालय के सभी पूर्व-छात्रों को विद्यालय-परिसर में प्राप्त शिक्षा एवं संस्कारों को स्थायी बनाना तथा उनके हृदय में राष्ट्र-भक्ति एवं राष्ट्र-सेवा का भाव दृढ़ करना ।

साधन तथा गतिविधियाँ—

३— परिच्छेद २ में वर्णित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित साधन अथवा गतिविधियाँ अपनाई जायेंगी :—

(क) समय-समय पर विद्यालय अथवा किसी भी पूर्व निर्धारित स्थान पर सदस्यों को बुलाकर विचार-विमर्श करना । ऐसे विशेष अवसर विद्यालय अथवा 'तरुण-भारती' का वार्षिकोत्सव तथा पं० दीनदयाल उपाध्याय का जन्म दिवस हो सकते हैं ।

(ख) वर्ष में कम से कम दो शिविर आयोजित करना जो विद्यालय के किसी आचार्य अथवा किसी और सम्मानित व्यक्ति के मार्ग-दर्शन में योग्य संस्कारों के उपार्जन हेतु संचालित हों ।

(ग) समय-समय पर किसी राष्ट्रीय महत्व के विषय पर परिचर्चा आयोजित करना जिसमें बाहर के विद्वानों को भी भाग लेने हेतु निमन्त्रित किया जा सकता है ।

(घ) समय-समय पर विद्यालय के किसी आचार्य अथवा किसी भी योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में सदस्यों का देश-भ्रमण आयोजित करना ।

(ङ) कुछ ऐसे रचनात्मक कार्य सदस्यों द्वारा कराना जिनसे उनमें समाज-सेवा और देश-प्रेम की भावना पुष्ट हों । जैसे साक्षरता-प्रसार, प्रौढ़-शिक्षा, श्रम-दान, संकट-ग्रस्त लोगों की सहायता, रोगियों की परिचर्या, अस्पृश्यता-निवारण, स्वच्छता-अभियान आदि ।

(च) कानपुर तथा अन्य स्थानों पर भी जहाँ पर्याप्त संख्या में पूर्व छात्र मिल सकें, स्वाध्याय-केन्द्र स्थापित करना जहाँ सत्साहित्य का संग्रह तथा उसके पठन-पाठन की व्यवस्था हो सके ।

(छ) वर्ष में कम से कम एक बार, साधारणतया मई मास में साधारण सम्मेलन बुलाना जिसमें अगले वर्ष के लिए कार्य-कारिणी का चुनाव हो, पिछले वर्ष के कार्य का सिंहावलोकन हो तथा अगले वर्ष के लिए योजनाएँ प्रस्तुत की जायँ ।

(ज) उपर्युक्त प्रकार के सम्मेलन के लिए प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक सप्ताह पूर्व कार्य-सूची सहित सूचना मिलना आवश्यक है ।

(झ) साधारण-सभा की, विशेषत: जिसमें चुनाव हो गण-पूर्ति (quoram) सदस्य/संख्या की कम से कम १/३ (एक तिहाई) आवश्यक है।

(ञ) विशेष समारोहों अथवा किसी विशेष सामाजिक कार्य के लिए सदस्यों से अथवा जनता से चन्दा एकत्र करना।

सदस्यता—

४—(क) विद्यालय के वे पूर्व-छात्र, जो इस समय भी किसी शिक्षा-संस्था में विद्याध्ययन कर रहे हैं, १) रु० वार्षिक चन्दा देकर 'तरुण-भारती' के सदस्य बन सकते हैं; परन्तु जो छात्र-जीवन समाप्त कर जीविकोपार्जन करने लगे हैं, उनका सदस्यता-शुल्क कम से कम ५) रु० वार्षिक रहेगा।

(ख) जो पूर्व-छात्र एक साथ (१००) रु० शुल्क देगा वह 'तरुण-भारती' का आजीवन सदस्य होगा।

(ग) विद्यालय के वर्तमान आचार्य तथा प्रधानाचार्य अपने कार्यकाल तक तथा संस्थापक आचार्य अथवा प्रधानाचार्य आजीवन सदस्य होंगे। संस्थापक आचार्य अथवा प्रधानाचार्य वही समझेजायेंगे जो विद्यालय के उद्घाटन के समय आचार्य अथवा प्रधानाचार्य थे।

(घ) विद्यालय से सम्बन्धित किसी भी सम्मानित व्यक्ति को 'तरुण-भारती' की मानद सदस्यता प्रदान की जा सकती है।

कार्य-कारिणी का गठन तथा उसकी कार्यविधि—

५— क कार्यकारिणी के २५ सदस्य होंगे जिनमें कम से कम १५ कानपुर के ही होंगे और शेष १० बाहर के। ये सब साधारण सभा द्वारा केवल एक वर्ष के लिए निर्वाचित किये जायेंगे।

(ख) 'तरुण-भारती' के सात पदाधिकारी होंगे जो पदेन कार्यकारिणी के सदस्य होंगे—एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष, एक मन्त्री, दो उपमन्त्री तथा एक कोषाध्यक्ष। ये पदाधिकारी कार्यकारिणी के २५ सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे। इनमें से कम से कम एक उपाध्यक्ष तथा एक उपमन्त्री कानपुर से बाहर का होगा।

(ग) कार्यकारिणी की बैठक प्रति मास किसी अवकाश के दिन विद्यालय में होगी।

(घ) कार्यकारिणी की बैठक की सूचना कम से कम तीन दिन पूर्व विचारणीय विषयों की तालिका के साथ मन्त्री द्वारा सदस्यों के पास भेजी जायगी।

(ङ) कार्यकारिणी की बैठक की गण-पूर्ति (quoram) पाँच होगी।

(च) इन नियमों से परिवर्धन अथवा परिवर्तन कार्यकारिणी के कम से कम १० सदस्यों की उपस्थिति में पारित होंगे तथा उनका अनुमोदन साधारण-सभा द्वारा आवश्यक होगा।

(छ) कार्यकारिणी अपने मन्त्री के माध्यम से 'तरुण-भारती' के आय-व्यय तथा उसके कार्य-कलाप के निर्देशन के लिए उत्तरदायी होगी।

—ओम शङ्कर

यह संविधान पहली साधारण सभा में स्वीकृति हेतु रखा जायेगा। जो पूर्वछात्र अथवा आचार्य इसमें कोई संशोधन चाहते हों, वे साधारण सभा बुलाये जाने के कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व उसे भेजने की कृपा करें।

दुर्बलता–एक अभिशाप

–शशि शर्मा, बी० एस० सी० I
क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर

[प्रस्तुत लेख में तरुण लेखक ने दुर्बलता को बड़े उचित समय पर पहचाना है ।]

संसार हमारी कर्मभूमि है और हम अपने कर्त्तव्यों को तभी पूरा कर सकते हैं जबकि हम शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से समृद्ध हों। करणीय-अकरणीय का भेद करते समय प्रायः लोग सोचते हैं कि किसी को कष्ट देना, झूठ बोलना या विश्वासघात करना ही अकरणीय अथवा पाप है, किन्तु वास्तव में एक बहुत बड़ा और भी पाप है और वह है दुर्बल होने का पाप ।

दुर्बलता, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो, हमारे लिए अभिशाप है। वह हमारे मन से कभी न हटने वाला बोझ है। दुर्बल मनुष्य को लक्ष्य-पथ दुर्गम लगता है और लक्ष्य दुर्लभ। संसार उसे नाटकीय यंत्रणाओं का आगार लगता है। परिस्थितियों के झंझावात कमजोर व्यक्ति को उखाड़ फेंकते हैं। कमजोर व्यक्तित्व पाप और अपराधों की तरंगें शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है।

कमजोरी का सामान्य अर्थ हम शारीरिक रुग्णता अथवा शिथिलता से ही लेते हैं। जो शारीरिक रूप से दुर्बल है वह मानसिक दुर्बलता से अधिक समय तक दूर नहीं रह सकता। इस बात को समझ कर ही स्व० लोकमान्य तिलक ने कहा था— "शरीर को रोगी और दुर्बल रखने के समान दूसरा कोई पाप नहीं है। दुःखो का मूल हमारी कमजोरी ही है ।"

अपने स्वाभिमान और गौरव की रक्षा भी हम तभी कर सकते हैं, जबकि हम बलशाली हों। पराधीनता कमजोर व्यक्ति की नियति है । यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द मार्मिक स्वर मे कहते हैं— "सर्व प्रथम आपको बलवान् बनना होगा, धर्म पीछे आयेगा। तुम सभी भाँति बलवान् बनो, यही मेरा उपदेश है तुम्हारे लिये। गीता-पाठ, नाम-जप करने की अपेक्षा तुम फुटबाल खेलने से स्वर्ग के अधिक समीप पहुँचोगे। बलवान शरीर, मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे ।"

इस प्रकार वास्तविकता तो यह है कि हमारे दुःख हमारी दुर्बलता का ही परिणाम हैं; किन्तु हम अपनी कमी को स्वीकार न करके इसके लिए या तो दूसरों को दोष देते हैं या अपने भाग्य को कोसते हैं। जब हम दूसरों की शिकायत अधिक करते हैं तो यह समझना चाहिए की हमारे भीतर अवश्य कोई ही कमजोरी है। शक्ति के सम्मुख न तो अन्याय ठहर सकता है और न अन्यायी ।

यह तो थी शारीरिक दुर्बलता, किन्तु मानसिक दुर्बलता को दूर करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है । ईर्ष्या-द्वेष, असहिष्णुता, चिंतन-शक्ति का अभाव एवं स्वार्थपरता मानसिक दुर्बलता के ही संकेत हैं। मानसिक रूप से दुर्बल मनुष्य कोई भी रचनात्मक और लाभदायक कार्य नहीं कर सकता। अपनी शारीरिक दुर्बलता को हम काफी हद तक इच्छा-शक्ति और मानसिक-क्षमता से दूर कर सकते हैं। महात्मा गांधी शारीरिक दृष्टि से

दुर्बल होते हुए भी अपनी इच्छा-शक्ति और संकल्प के कारण पूज्य हो गये ।

सामाजिक दुर्बलता का भी बहुत महत्व है । व्यक्तिगत रूप से हममें चाहे कितनी ही क्षमतायें क्यों न हों; किन्तु यदि हम संगठित नहीं हैं तो हमें और हमारे देश को पतन के गर्त में गिरने से कोई नहीं बचा सकता । अपनी सामाजिक दुर्बलता के ही कारण हम राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल और पृथ्वीराज जैसे वीरों का पूरा लाभ न उठा सके किन्तु संगठित होकर हमने अंग्रेजों की पाशविकता को दूर फेंक दिया । दुर्बल मनुष्य भी यदि सामाजिक संगठन में आबद्ध है और थोड़ा सा भी संकल्प रखता है तो उसका दमन असंभव है ।

इन सभी दुर्बलताओं के साथ ही आर्थिक दुर्बलता भी हमारी प्रतिभा और क्षमताओं को प्राय: कुंठित कर देती है ; किन्तु महत्व के क्रम में इसका बाद में स्थान है ।

यह सही है कि इस अर्थ-प्रधान युग में आर्थिक कमजोरी के कारण अपने अपेक्षित उत्तरदायित्व को न निभा पाने का कष्ट भी बड़ा असह्य है; किन्तु हम अपने आपको शारीरिक और मानसिक दृष्टि से संपन्न बना लें तो हम इसे भी पार कर सकते हैं ।

सारांश यह कि शक्ति ही जीवन है और दुर्बलता मृत्यु । दुर्बल व्यक्ति की नियति है— कुण्ठा, नैराश्य और पराधीनता । अत: अपना लक्ष्य निर्धारित करने और बड़े–२ उपदेश देने या सुनने के पहले यह बहुत आवश्यक है कि हम मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हों । ऐसा करने के बाद हमें अबाध गति प्राप्ति होगी और हमें अपना लक्ष्य पहुत पास ही दिखेगा ।

आओ और हँसें !

१. एक बार दो मित्र बाजार जा रहे थे । उनमें से एक शहरवासी था और दूसरा ग्रामवासी । शहरवासी बोल उठा "**Twinkle twinkle little star How I wonder what you are.**" बीच में ही बात काटते हुए ग्रामवासी बोल पड़ा "टिण्डे-टिण्डे आम के अचार हम खायें तुम ले लो डकार ।"

२. एक व्यक्ति को क्रिकेट खेलने का बड़ा शौक था । एक दिन उसने अपने नौकर रामू से कहा—"रामू ! तुम बालिंग करो । मैं बैटिंग करता हूँ ।" खेल शुरू हुआ । श्रीमान् जी ने एक शाट जमाई, गेंद पहुँची रसोई घर में । नौकर गेंद लेने पहुँचा रसोई में तो मालकिन ने भेज दिया बाजार सामान लेने । इधर साहब रन बनाने में व्यस्त । थोड़ी देर में नौकर आया तो साहब हाँफते हुए बोले–रामू तुम गेंद भी नहीं ला पाये मैंने ५० रन से६२९रन बटोर लिये । इस पर रामू ने कहा–मालिक मैं सामान लेने बाजार गया था ।

—धीरेन्द्र कुमार सप्तम 'क'

३. एक सेठ जी का अन्त काल जब निकट आया तो उन्होंने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बुलाकर कहा– "अब मैं चला" । तभी उनका नौकर बोला—'रुकिये, सेठ जी ! अभी कार लाता हूँ ।'

—संजय जुत्शी सप्तम 'क'

भविष्य का आशा केन्द्र—

तरुण-भारती

—चन्द्रपाल सिंह

इस विद्यालय की एक उच्चतम कक्षा उत्तीर्ण कर अन्य विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों को यहाँ रहने की अवधि में जो संस्कार प्राप्त हुए, वे किस प्रकार सुरक्षित रहें यह विद्यालय के हितैषियों की चिन्ता का विषय बना हुआ था। अन्य विद्यालयों में स्थापित प्राचीन छात्र परिषदें केवल सम्पर्क-माध्यम का ही काम करती हैं और वर्ष में एक बार बैठक तथा प्रीति-पेय, आयोजित कर, अपना कर्त्तव्य पूरा हुआ समझ लेती है। अतः पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय जैसी शिक्षा संस्था में, जिसका उद्देश्य देश को अनेक दीनदयाल देना है, इसी प्रकार की पिटी-पिटाई परम्परा पर आधारित पुराने छात्रों का संगठन खड़ा करने से किसी को सन्तोष नहीं होता। विशेषतः इस विद्यालय के जन्म से इसकी सेवा का व्रत लिये हुये इसके छात्रों की चारित्रिक प्रगति में रुचि लेने वाले तथा विद्यालय की चिन्ता करने वाले आचार्यों के मस्तिष्क में यह विचार आया कि क्यों न इस विद्यालय के पूर्वछात्रों को इस प्रकार संगठित किया जाय कि वे न केवल मातृ विद्यालय (Alma-mater) से प्राप्त संस्कारों को अक्षुण्ण बनायें रहें, वरन् कुछ ऐसे रचनात्मक कार्य भी करें, जिनसे समाज को लाभ भी पहुँचे। जब यह विचार विद्यालय के अध्यक्ष श्री शिवशरण शर्मा तथा मेरे सम्मुख रखा गया, हम दोनों ने इसे बहुत पसन्द किया। फलतः फाल्गुन कृष्ण ३ सं० २०३४ [२६ फरवरी १९६८] को इस विचार को तरुण-भारती की स्थापना के द्वारा मूर्त-रूप दे दिया गया।

ऐसा सोचा गया है कि 'तरुण-भारती' की कार्य-कारिणी तो प्रति मास मिला करे और इसके साधारण सदस्यों के भी वर्ष में कम से कम चार कार्यक्रम हों। इन कार्यों में दो शिविर और दो विचार गोष्ठियाँ हों। इनके साथ ही कोई रचनात्मक कार्यक्रम जैसे साक्षरता-प्रसार, प्रौढ़-शिक्षा, रोगी-परिचर्या, स्वास्थ्य-शिक्षा, श्रमदान, स्वच्छता-अभियान आदि किये जा सकते हैं। लगातार कई दिनों का अनुशासित जीवन बड़ा ही संस्कार-क्षम होता है। मुख्य नगरों में जहाँ आस-पास के छात्र मिल सकें स्वाध्याय-केन्द्र चलाए जा सकते हैं।

विचार-विनिमय के लिये जब तक अपनी स्वतन्त्र पत्रिका न हो तब तक विद्यालय की पत्रिका 'नीराजन' में पूर्व छात्रों के लिये कुछ पृष्ठ आरक्षित रहें। इस प्रकार न केवल विचारों को अभिव्यक्ति मिलेगी वरन् विद्यालय की गतिविधियों से भी वे अवगत होते रहेंगे। पूर्व छात्रों की कुछ टोलियाँ समय-समय पर भ्रमण के लिये भी जा सकती है। एक दूसरे से मिलने पर आपस में अपनी विशेष अभिरुचियों [hobbies] का विनिमय भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए फोटोग्राफी

विद्यालय के (निवर्तमान) आद्य प्रधानाचार्य

श्रीयुत चन्द्रपाल सिंह जिनकी कर्मठ कर्तव्य परायणता आपातस्थिति में विद्यालय का अभेद्य कवच थी और तत्कालीन सरकार को इतनी खटकी कि उनसे बलात् त्यागपत्र लिखवाया गया।

..................जो झंझाओं में भी मुस्कराते रहे ।

हाई स्कूल परीक्षा

१९७७

विद्यालय रत्न

चि० नरेन्द्र अग्रवाल

जिन्होंने सन् १९७७ की हाईस्कूल परीक्षा में ८१·४% अङ्क प्राप्त किये

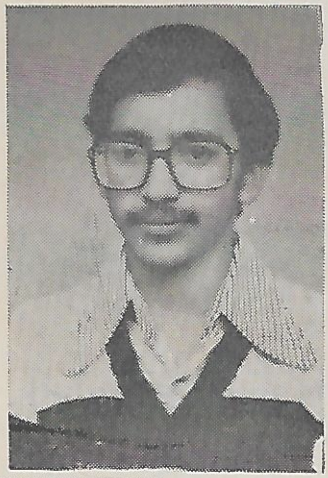

चि० नवीन भार्गव

जिन्होंने इसी परीक्षा में ८०·२ % अङ्क प्राप्त किये ।

चि० प्रीत कुमार

जिन्होंने इसी परीक्षा में ७९% अङ्क प्राप्त किये ।

चि० अभय राज सिंह

जिन्होंने इसी परीक्षा में ७७·४% अङ्क प्राप्त किये ।

चि० रमेश कुमार

जिन्होंने इसी परीक्षा में ७६·४% अङ्क प्राप्त किये ।

जानने वाला ट्रांजिस्टर बनाने का ज्ञान रखने वाले को फोटोग्राफी सिखा सकता है, और दूसरा पहले को ट्रांजिस्टर बनाना तथा मरम्मत करना सिखा सकता है। आगे चलकर 'तरुण-भारती' किसी सामाजिक बुराई जैसे दहेज-प्रथा अथवा अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान भी चला सकती है इस प्रकार वह एक प्रबल युवा-शक्ति के रूप में समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिक निभा सकती है। तरुण-भारती के सदस्य भविष्य में समर्थ होकर विद्यालय के विकास में भी सहायक हो सकते हैं।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि विद्यालय के पूर्व छात्रों में से अनेक निष्ठावान एवं कर्मठ तरुण निकलेंगे और तरुण-भारती के आधार श्री ओमशङ्कर त्रिपाठी जैसे आचार्य के मार्ग-दर्शन में सफलता पूर्वक परिश्रम करके, जिस लक्ष्य को लेकर इस संगठन की स्थापना की गई है उसे प्राप्त करेंगे।

"यह सोचने के बजाय कि व्यक्ति परावलम्बित है, हमारे यहाँ यह कहा गया है, कि व्यक्ति परस्परावलम्बित है। सभी आपस में एक - दूसरे पर अवलम्बित हैं। इतना ही नहीं हमारे यहाँ परस्पर अवलम्बित होने की भावना से भी ऊपर उठ कर यह सोचा गया कि, हम आपस में एक दूसरे के अनुकूल हैं। अनुकूलता और अवलम्बन के अर्थ में बहुत बड़ा अन्तर है। अवलम्बन में दीनता है, परस्परावलम्बव में भी निर्भरता है; किन्तु अनुकूलता में अपनी शक्ति का समादर है। जैसे पुत्र पिता पर अवलम्बित है; किन्तु पिता भी कई अर्थों में पुत्र पर अवलम्बित है। इतना ही सोच कर व्यवहार करने पर उनमें एक दूरी बनी रहना स्वाभाविक है। किन्तु यदि ऐसा सोचा गया कि पिता और पुत्र दोनों आपस में परस्परानुकूल हैं, तो एक का सुख दूसरे का सुख होगा। यही परस्परानुकूलता हमारे भारतीय जीवन–रचना–दृष्टि की विशेषता है।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

धर्मो रक्षति रक्षितः

—अनिल कुमार, बी० एस० सी० द्वितीय वर्ष, पंजाब विश्वविद्यालय

["धर्म" जैसे दुरूह व चिन्तन-प्रखर विषय को लेखक ने अपनी लेखनी से सरलीकृत करने का प्रयास किया है ।]

धर्म शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है । धर्म का अर्थ है समस्त ब्रह्माण्ड का धारक । अर्थात् जो समस्त चराचर जगत को धारण करता है वही धर्म है ।

"धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृता प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।।"
(महा० शान्ति० १०९/११)

समस्त प्राणीभूत को स्वयं में समावेशित करने की क्षमता रखने वाला ही धर्म है । इसके अतिरिक्त महर्षि कणाद् के शब्दों में प्रकृति के नियमों का पालन करना ही धर्म है ।

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।
अर्थात्
"जिससे इस लोक में अभ्युदय हो और परमकल्याण रूप मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है ।"

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, वायु, अग्नि, समुद्र आदि ये सब इस सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी के बनाये नियमों का पालन स्वाभाविक रूप से करते हैं और सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं नियमों में आबद्ध होकर चल रही है । किन्तु अगर उन नियमों का पालन विधिवत् रूप से न हो तो सब कुछ विध्वंस हो जाएगा । उदाहरण स्वरूप अगर हम चलती रेलगाड़ी के सम्मुख खड़े होंगे तो कट कर मर जायेंगे; किन्तु अगर उसके भीतर बैठेंगे तो अवश्व ही अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त कर लेंगे । अतः इन नियमों-व्यवस्थाओं का अनुकूलन ही धर्म है ।

मानव-मात्र इस निर्विकार ब्रह्म की सर्वोत्कृष्ट एवं अद्‌भुत कृति है । इस धरा पर विद्यमान चौरासी लाख योनियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्रतिभा-सम्पन्न जीव है, जो कि धर्म का विधिवत् पालन करने में सक्षम है । अब प्रश्न उठता है कि इस प्रकार से धर्म-पालन में समर्थ मानव को धर्म का पालन करना अर्थात् क्या करना है; तो इसे गोस्वामी जी बड़े सरल शब्दों में कहते हैं कि—

"परहित सरिस धरम नहि भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।"

× × ×

जगन्नियन्ता भगवान श्रीकृष्ण भी इस बात को इस प्रकार से स्पष्ट करते हैं :—

"तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गातिम् ।।"
(गीता १६/१९–२०)

['उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ अर्थात् शूकर-कूकर आदि नीच योनियों में ही उत्पन्न करता हूँ । हे अर्जुन ! जन्म-जन्म में आसुरी योनियो को प्राप्त कर वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरक में पड़ते हैं ।]

वे स्वयं कहते हैं जो धार्मिक हैं अर्थात् परहित में लगे रहते हैं उन्हें भगवान की प्राप्ति होती है ।

"संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।"
(गीता १२/४)

['वे इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार वश में करके सब में समान भाव वाले योगी सम्पूर्ण भूतों के हित में रत हुए मुझको (भगवान को) ही प्राप्त होते हैं ।"]

श्रुतियों, स्मृतियों तथा अन्य अनेक महापुरुषों की वाणी से भी इस क्लिष्ट एवं गूढ़ विषय को बड़ी ही स्पष्ट रीति से बतलाया गया है । मनु महाराज क्या कहते हैं, देखिए—

"वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।"
(मनु० २/१२)

['वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार तथा जिसके आचरण से अपना हित हो और मन प्रसन्न हो, इस तरह ये धर्म के लक्षण कहे गये हैं ।']

सृष्टि का आधार यह धर्म सूक्ष्मतम एवं विराटतम वस्तु में भी उचित मात्रा में परिव्याप्त है । स्थाविर जंगम जितने भी प्राणी इस संसार में हैं, सभी धर्म के नियमों का पालन स्वाभाविक रूप से करते हैं । प्रत्येक जीव-मात्र स्वधर्म पालन के ही कारण एक दूसरे से सम्बन्धित है । उदाहरण स्वरूप वृक्ष का क्या धर्म है ? यही तो कि मनुष्य द्वारा त्याग की हुई वायु का अवशोषण करना एवं उसके लिए उपयोगी वायु देना । और इस धर्म का वह जीवन पर्यन्त विधिवत् पालन करता है । मनुष्य का धर्म है कि वह अन्य प्राणियों का पालन-पोषण करे । अगर वह इस परब्रह्म द्वारा बनाये गये कानून की अवहेलना करता है तो वह धर्माचारी नहीं है । वह अधार्मिक है, संसार का शत्रु है । इसलिए हम कह सकते हैं कि धर्म वस्तु-वस्तु में व्याप्त है ।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी धार्मिक है । अगर चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एवं सूर्य अन्य बड़े ग्रहों के चारो ओर न चक्कर लगाते रहें तो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही विखंडित हो जाएगा ।

अब धर्म क्या है ? यह तो स्पष्ट हो गया; किन्तु मानव मात्र किस प्रकार से इसका पालन करे, यह समस्या उठती है और इस समस्या का निराकरण करते हुए मनु महाराज पुनः स्पष्ट करते हैं—

"धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं, शौचं इन्द्रिय-निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्म लक्षणम् ।।"

आइये, अब हम इन दसों लक्षणों की विधिवत् विवेचना करें ।

धृतिः—धृति अर्थात धैर्य मानव जीवन का वह प्रमुख अंग है जिसके अभाव में उसकी सत्ता ही नगण्य हो जाती है । कितना ही गुण-सम्पन्न कोई व्यक्ति हो और अगर किसी विषम परिस्थिति के आने पर अपना धैर्य खोकर असंतुलित हो जाये तो उसके गुणों का अर्जन व्यर्थ है । उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति के गम्भीर चोट लग जाती है और दूसरा व्यक्ति तत्काल ही उसका इलाज कराने में घबराहट-वश अक्षम है । ऐसे समय में अगर उसने धैर्य पूर्वक कार्य

न किया, तो चोट-ग्रस्त व्यक्ति मर भी सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि धैर्य मानव-जीवन का अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य अङ्ग है।

क्षमा :—इसी प्रकार क्षमा भी मानव का एक दैवी गुण है। इसका मूल रूप में निवास प्रत्येक मानव अन्तः-करण में है; किन्तु विकास कुछ ही कर पाते हैं। प्रायः लोग या तो इतने क्षमावान हो जाते हैं कि प्रत्येक सहने न सहने योग्य सभी बातें सहते रहते हैं अथवा बात-बात पर झगड़ते रहते हैं ; किन्तु विवेक की कसौटी पर यह कस लेना चाहिए कि कौन सा अपराध क्षम्य है, कौन सा अक्षम्य। जो यह सब जानकर कार्य करता है, वही असली क्षमावान है। यह सब तभी सम्भव है जब मानसिक एवं शारीरिक रूप से हम पूर्णरूपेण स्वस्थ हों। अक्षम्य अपराध वे होते हैं जिनका परिणाम समाज के लिये अहितकर होता है एवं क्षम्य अपराध वे होते हैं जो कि भविष्य में किसी विशेष प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते हैं।

दम :—तीसरा लक्षण है दम अर्थात् दमन शक्ति। यह एक ऐसा मानवीय गुण है जो प्रारम्भ में ही व्यक्ति की विलक्षण एवं अद्भुत प्रतिभा को स्पष्ट कर देता है। इन्द्रिय-निग्रह का अर्थ है इन्द्रियों पर नियन्त्रण; किन्तु मन में अगर किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाये तो उससे छुटकारा दमन-शक्ति ही दिलाती है। दमन-शक्ति दो प्रकार की होती है। वाह्य और अन्तरिक। आन्तरिक दमन-शक्ति से तो में आपको अवगत करा ही चुका हूँ। वाह्य शक्ति का तात्पर्य है अपने समक्ष हो रहे अत्याचार या अन्याय को निर्भीकतापूर्वक दबाने से। उदाहरणार्थ हमारे समक्ष कोई व्यक्ति या नौजवान अपने से छोटे को बिना कारणवश मार रहा है, ऐसे समय में अधिकार पूर्वक हमें उस व्यक्ति का प्रतिकार करना चाहिए। आजकल लोगों का कहना है जब वह मार रहा है तो उसे मारने दो। उससे हमारा क्या सम्बन्ध ? अरे वाह रे वाह। सम्बन्ध है और एक ही समाज के अङ्ग होने के कारण प्रगाढ़ सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध को ध्यान में रख कर उस अत्याचारी का विरोध करना चाहिये—यही वाह्य दमन-शक्ति है।

अस्तेय :—अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। मानसिक पतन, लौकिक शक्तियों का ह्रास, सामाजिक अप्रतिष्ठा चोरी करने का फल है। अतः धार्मिक होने के लिए अस्तेय नामक गुण भी परमावश्यक है। जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महाबीर ने तो यहाँ तक कह डाला कि दाँत खोदने के लिए तिनका भी लें तो उस तिनके के मालिक से आज्ञा लेने पर ही तोड़ें अन्यथा अस्तेय नामक गुण अपने से विलुप्त हो जायेगा। चोरी भी दो प्रकार की होती है—

(१) वस्तुओं की चोरी (२) विचारों की चोरी।

वस्तु तो साधारणतया एक स्थूल चीज है। अगर हम बिना आज्ञा के उसे उसके उचित स्थान से लुप्त करदें तो वस्तु चोरी हो जायेगी।

किसी के वाक्य या विचार ग्रहण कर उन्हें अपना बता कर व्याख्या करना भी विचारों की चोरी है।

शौच :—इसके बाद हम शौच पर आते हैं। शौच अर्थात् पवित्रता। इस गुण को मानव-जीवन की आधार शिला का सम्बोधन दे दें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। मन की स्थिरता के लिए पवित्रता अत्यावश्यक है। स्वाभाविक रूप से लोगों का मन पवित्र व्यक्ति की ओर आकर्षित होता है। अतः अपने विकास के लिये मन को निर्मल रखना चाहिये। गोस्वामी जी के राम तो स्पष्ट रूप से कहते हैं—

"निर्मल मन जा कहँ जो आवा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।"

पवित्रता भी दो प्रकार की होती है—आन्तरिक एवं वाह्य। आज लोग प्रायः ऊपर बड़ी चमक-दमक रखते हैं किन्तु भीतर.................... ?

इसी प्रकार कुछ लोग भीतरी पवित्रता का ही राग अलापते रहते हैं और बाहर से वातावरण को बदबूदार बनाते घूमते रहते हैं। स्पष्ट है दोनों गलत हैं। ये दोनों

पवित्रतायें अन्योन्याश्रित हैं। दोनों का प्रभाव एक-दूसरे पर पूरी तरह से पड़ता है।

इन्द्रिय निग्रह :—महाराज मनु के अनुसार इन्द्रिय निग्रह छठवें स्थान पर आता है; किन्तु वास्तव में इन्द्रिय निग्रह जीवन का प्रथम और अनिवार्य सद्गुण है। गोस्वामी जी ज्ञानियों को सचेत करते हुये इन्द्रियों की प्रबलता के सम्बन्ध में कहते हैं कि—

"इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना।
तहँ तहँ करि बैठे सुर थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी।
ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

अर्थात् ये इन्द्रियाँ वे द्वार हैं जो विषय-वासनाओं को बलात् अपने में प्रविष्ट करा लेती हैं। वास्तव मे यदि उन विषय-वासनाओं का समाहार न किया जाये तो निश्चित रूप से विकास के सोपानों को भी नहीं प्राप्त कर सकता। इन्द्रियों को अपने यहाँ घोड़ा कहा गया है जिसका नियन्त्रण बुद्धि नामक सारथी मन रूपी लगाम से करता है। अतः यह हमें निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पड़ेगा यदि सर्वगुणी व्यक्ति भी इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने में अक्षम है तो उसे भी निश्चित ही पाप के गर्त में जाना पड़ेगा।

धी :—धी अर्थात् बुद्धि। परम पिता परमेश्वर द्वारा निर्मित इन सप्त ईश्वरीय तत्वों भूमिः, आपः, अनलः, वायुः खं, मनः बुद्धि में बुद्धि-तत्व सर्वोत्कृष्ट एवं सूक्ष्म है। बुद्धि ही मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने में सक्षम है। यह बताते हुए हमारे यहाँ के मनीषियों ने कहा है—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीर रथमेव तु।
बुधिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च॥"

अतः अब हम सहज ही इसका आकलन कर सकते हैं कि बुद्धि ही सर्वोपरि आवश्यक तत्व है। मन रूपी लगाम कितनी भी दृढ़ हो, इन्द्रियों के घोड़े कितने भी तेज हों, लेकिन अगर बुद्धि-सारथी निर्बल है तो हम मनोवांछित स्थान तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो सकते।

विद्या :—बुद्धि का सर्वोत्तम उपयोगी अंग विवेक विद्या का ही आधार लेकर आगे बढ़ता है। विवेक अर्थात् व्यवहारिक ज्ञान। हमारे यहाँ कहा भी गया है—

"विद्या ददाति विनयं, विनयं याति पात्रताम्।"

विद्या से मात्र विनय और योग्यता ही की प्राप्ति नहीं होती अपितु सर्वांगीण विकास करने में विद्या ही सक्षम है। विद्या की तुलना तो अपने यहाँ कल्पवृक्ष से की गयी है जो कि विविध प्रकार के वरदानों को देने वाला है। अपने यहाँ कहा गया है—

"किम् किम् न साधयति कल्पलतेव विद्या।"

विद्या न मात्र विद्यार्थियों की ही गुरू है, बल्कि उनके निर्माण में रत गुरुओं की भी गुरू है। इसीलिये विद्या को 'गुरूणाम् गुरुः' कहा गया है।

सत्यं .— ईश्वर की माया बड़ी विचित्र है, जो वस्तु सरल व स्पष्ट है, उसे उसकी माया से आविर्भूत प्राणी विशेषकर मनुष्य, ग्रहण करने में संकोच करता है। इसके विपरीत टेढ़ी-मेढ़ी मिथ्या, अनेक आवरणों में लिपटी मायामयी बातें उसे बहुत पसन्द आती हैं। परिणाम-स्वरूप वह उन्हीं मिथ्या आडम्बरों में उलझा रहता है। किन्तु जब विचार करके सरल हृदय से देखा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सत्य एक ऐसा आडम्बर-हीन सुन्दर सात्विक तत्व है जिसका प्रयोग सदा सर्वदा के लिए परम शान्ति देने वाला होता है। उदाहरणों की कमी नहीं। महाराज हरिश्चन्द्र से लेकर आज के युग में महात्मा गाँधी तथा श्री गुरु जी तक अनेक महापुरुष इसी एक तत्व को आधार मान कर ईश्वरत्व की कोटि में पहुँच गये हैं।

इसी प्रकार हमारा संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय इन्हीं

परम तत्वों से ओत-प्रोत है। सत्य-धर्म का आचरण करने वाला सदा शान्त होता है। असत्य पर चलने वाला सदैव मन से सशङ्कित एवं भयभीत रहता है। इसीलिए यह कहा गया है :—

'सत्यं जयति सर्वदा'
तथा
'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्'।

हमारे प्राचीन विद्वानों ने मन की स्थिरता एवं शान्ति के लिए क्या सुन्दर कहा है:—

"सत्यं ब्रूयात प्रियम् ब्रूयात
न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्
प्रियं च नाऽनृतम् ब्रूयात्
एष धर्मः सनातनः।"

अक्रोधं—गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

"क्रोधात् भवति सम्मोहः, सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।"

अर्थात् क्रोध से सम्मोह हो जाता है, सम्मोह से स्मृति दिग्भ्रमित हो जाती है, स्मृति के दिग्भ्रमित होने से बुद्धि का नाश हो जाता है एवं बुद्धि के नाश होने से मनुष्य मरे के समान हो जाता है। सारांश में यह कह सकते हैं कि क्रोध ही वह दुर्वृत्ति है जिसके कारण मनुष्य जीवित रहते हुए भी मृत-सम हो जाता है। 'क्रोध' नामक दुर्गुण से अछूता मनुष्य ही वीर हो सकता है। इसीलिए कहा गया है :—

"अक्रोधेन जयेत्क्रोधम्।"

इस प्रकार हमने देखा कि धर्म एक वह महत्तत्व है जिसका प्रभाव सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन है। उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो लोग धर्म को अफीम मानते हैं वे भी धर्म को बड़े आदर से अपनाते हैं।

हमारे देश में धर्म को मानव के लिए परमोपयोगी मानकर उनके जीवन के साथ बड़ी सहजता से जोड़ दिया गया था, जिसका परिणाम आज का हमारा इतना झंझावातों को सहन करके भी उन्नत-मस्तक खड़ा हुआ देश है। दुर्दैव से हम लोग भी इस समय धर्म के संकुचित रूप में ही उलझ कर उससे दूर होते जा रहे हैं। इसी का परिणाम है कि आज सारा देश समस्याओं से ग्रस्त है। आज आवश्यकता है धर्म के यथार्थ रूप को पहचान कर उसके विधिवत् पालन करने की, तभी हम "धर्मो रक्षति रक्षितः" को चरितार्थ कर सकेंगे।

चाणक्य–एक आदर्श देश-भक्त

लेखक–दुर्गेश कुमार, बी०एस०सी० I
प्रयाग विश्व विद्यालय

["शठे शाठ्यं समाचरेत्" जैसे आप्त–वाक्यों के उद्घोषक, कूटनीति के महानतम ग्रन्थ "अर्थशास्त्र" के रचयिता त्रिष्णुगुप्त, 'चाणक्य' अथवा कौटिल्य ने जिस जगद्गुरु भारत का स्वप्न देखा था, उसे एक बड़ी सीमा तक भूतल पर उतार भी दिया। लेखक उसी चाणक्य के अपाक्तेय व्यक्तित्व के कतिपय सशक्त पक्ष यहाँ प्रस्तुत कर रहा है।]

"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते" का मन्त्रोद्घोष करने वाले आचार्य चाणक्य की, जब कि प्रत्येक ओर अपने समाज में निर्बलता, अस्थिरता, चरित्र-हीनता, लक्ष्यहीनता और अराष्ट्रीयता व्याप्त है, आज परमावश्यकता है। पुनः हमको वह महामानव सशरीर नहीं प्राप्त हो सकते; किन्तु उनके कर्तृत्व संजीवनी की भाँति मुर्दों में प्राणों का संचार करने का सामर्थ्य रखते हैं। यह वही पुरुष हैं, जिन्होंने अपनी अन्तर्निहित प्रचण्ड तेजोमय शक्तियों के द्वारा अलक्षेन्द्र जैसी विश्व-विजय की लालसा रखने वाली शक्ति को पराभूत कर दिया था। अतः अपने राष्ट्र को उन्नत बनाने के लिये उनके जीवन से, उनके कार्यों से प्रेरणा लेकर कार्य करने की आवश्यकता है।

तक्षशिला के प्रसिद्ध विद्वान् चणक के घर में अवतीर्ण होने वाले इस बालक पर अनेक विपत्तियाँ आयीं। जैसा कि सदैव महापुरुषों के जीवन में घटित होता रहता है, अल्पायु में ही यह अपने जनक की स्नेहिल छाया से वंचित कर दिये गये; लेकिन व्रती पुरुष को परिस्थितियों के मोड़ कभी डिगा नहीं सकते और इसीलिये इन्होंने प्रत्येक कष्ट को धैर्य और साहस के साथ सहा भी। इनका पथ-निर्देशन करने वाला कोई नहीं था। पथ-प्रदर्शक इनके पिता पापी व कामी नन्द के द्वारा मरवा डाले गये थे। अत्यल्पायु होते हुए भी वह अपनी स्वप्रेरणा से निर्धारित पथ की ओर सदैव अग्रसर होते गये। यह पंक्तियाँ उन पर पूर्णतया सटीक बैठती हैं—

"बीच राह में माथ पकड़ कर कायर ही बैठा करते हैं,
वीर सदा अपने कर्मों से भाग्य बिन्दु बदला करते हैं।"

चूँकि वे वीर थे इसीलिए इनको पर्यावरणीय वात्याचक्र झुकाने में सदा असमर्थ रहे।

भगवान ने इन पर कठिनतम् परिस्थितियों का अम्बार लगाकर इन्हें दृढ़ से दृढ़तम बनाया और उसी के फल स्वरूप वे अपने उद्देश्य के प्रति सदैव सचेष्ट और सचेतन रहते हुये भारत माता को विश्व में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करने में तत्पर रहे और पर्याप्त मात्रा में सफल भी हुये।

अशुद्ध वातावरण में साँस लेते हुए भी वे इससे

अछूते रहे। ऐसे ही सामाजिक पर्यावरण में उन्होंने सही अर्थों में जो अध्ययन किया, उसका उपयोग उनके लिए लिए कम किन्तु भारतवर्ष के लिये बहुत अधिक हुआ। तक्षशिला में अध्ययन करने के पश्चात् इन्होंने समय की आवश्यकता को समझते हुये वहीं अध्यापन कार्य किया। अपने तेजोमय व्यक्तित्व और प्रबल आत्म-विश्वास युक्त बौद्धिक क्षमता द्वारा अपने छात्र चन्द्रगुप्त को, जिसमे कि अनेक शक्तियाँ, अपरिपक्वावस्था में विद्यमान थीं, उनको परिपक्व करके समाज-सेवा के लिये तैयार किया। उनके व्यक्तित्व ने सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। उनकी चारित्रिक दृढ़ता तो उनके अन्तरतम में दृष्टिगोचर होती थी, ऊपर से तो केवल कृष्णवर्ण वाले व्यक्ति ही दिखाई देते थे। इनको देखने से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता था कि उन्होंने अपने शरीर को अपनी अध्ययनशीलता और अपने ज्ञान की ज्वाला में जला डाला हो और तभी वह इतने तपे हुये होने के कारण इतने प्रतिकूल समय में भी अपने लक्ष्य की पूर्ति में सक्षम हो सके। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है; किन्तु फिर भी उनके कार्यों का हम अपनी थोड़ी सी बुद्धि के आधार पर आकलन करने का प्रयत्न कर रहे हैं—

त्याग—उन्होंने विद्यार्थी जीवन में बहुत ज्ञानार्जन कर लिया था और यदि वे चाहते तो उस अध्ययन के द्वारा जीवन पर्यन्त सुखोपभोग कर सकते थे; लेकिन उन क्षणिक सुखों को तृण-तुल्य समझ कर उन्होंने उनसे विरक्ति का भाव मन में धारण करके पहले अध्यापन कार्य किया और उसके बाद जीवन भर सन्यासी बनकर अपनी वसुन्धरा के कष्टों का निवारण करने के लिए अनेक कठिनाइयों का वहन करते हुए कार्य करते रहे।

इनके इस गुण का परिचायक निम्नलिखित उदाहरण है—

वे इतने बड़े साम्राज्य के प्रधान मंत्री होते हुये भी सामान्य-सी कुटिया में निवास करते थे और उसमें भी पूर्णनिष्ठा के साथ। जब सिल्यूकस चाणक्य की कुटिया में आया तो चाणक्य ने सिल्यूकस को देखते ही दिये के प्रकाश में कार्य करना बन्द करके उसे भी बुझा दिया। यह देखकर सिल्यूकस सशंकित हो उठा कि यह उसके विरुद्ध कोई षड़यन्त्र रचा गया है लेकिन चाणक्य ने उन्हें प्रेम से बैठाया, तो उसने चाणक्य से पूछा कि भगवन् आपने दीप क्यों बुझा दिया इस पर आचार्य ने उत्तर दिया कि मैं राज्य के दिये के प्रकाश में राष्ट्रकार्य कर रहा था लेकिन मैं इस समय अपने व्यक्तिगत उपयोग में उसे नहीं प्रयोग कर सकता, राष्ट्र कार्य में प्रयुक्त होने वाली प्रत्येक वस्तु का प्रयोग व्यक्तिगत कार्यों मे कदापि नहीं होना चाहिए।

धैर्यः—

धैर्य भी उनमें विपुल मात्रा में समाविष्ट था। न जाने कितने अपमानों का सामना करना पड़ा; उन्हें लेकिन दृढ़व्रती होने के कारण इन्होंने उनकी कोई परवाह नहीं की।

इनके इस गुण को एक उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। जब वे नन्द के यहाँ राष्ट्र-संगठन के उद्देश्य से गये थे, तो नन्द ने, जो कि अपने गेह में अस्त-व्यस्त होकर मदिरा-पान करते हुये वेश्याओं की नृत्य-वीथिकाओं में झूम रहा था, उस बाल ब्रह्मचारी की बातों का कोई मूल्य न समझा, यही नहीं उसने उन नर्तकियों से लात मरवाकर भगाने का आदेश भी दिया था। ऐसा नन्द का व्यवहार देखकर उन्होंने अपनी चोटी खोल कर वहीं पर यह प्रतिज्ञा की कि जब तक नन्द साम्राज्य का अन्त नहीं कर दूँगा तब तक इस चोटी को नहीं बाँधूगा। लेकिन उनकी इस प्रतिज्ञा का तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत अपमान का बदला लेने के लिए यह प्रतिज्ञा की थी, अपितु इस लिए कि वह राष्ट्र-जीवन में बाधक था अतः उस हेतु उसका मरना अत्यन्त आवश्यक था।

प्रसिद्धि पराङ्मुखता :—

प्रसिद्धि पाने की इच्छा तो उन्हें स्पर्श भी नहीं कर

गई थी, अपने अथाह ज्ञानार्जन के द्वारा समाज में अपनी बहुत प्रतिष्ठा बढ़ा सकते थे, लेकिन इस ओर इनका ध्यान कभी भी नहीं गया। साधारणतया मनुष्य में लोकेषणा अवश्य ही रहती है, लेकिन यह उसके अपवाद थे। यह तो अपने को राष्ट्र का तुच्छ घटक समझकर कि इस महान् राष्ट्र कार्य में अपना योगदान अत्यावश्यक है, इस भावना को अपने मन में धारण कर जीवन-पर्यन्त इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर अविचल रूप से चलते रहे। अपने द्वारा किये गये कार्यों को पूर्ण करने का श्रेय वे दूसरे व्यक्तियों को ही देते थे। अपने को वे किसी भी कार्य का मुख्य नायक नहीं प्रकट होने देते थे।

इस प्रकार से उनमें हमको इस महान् गुण का अत्यन्त विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

इस गुण का पुष्ट उदाहरण इससे मिल जाता है कि जब चन्द्रगुप्त सम्राट हो गये थे तब उन्होंने चन्द्र गुप्त से राक्षस, जोकि नन्द का महामन्त्री था, को अपना मन्त्री बनाने के लिये कहा था। पहले चूँकि चन्द्रगुप्त को सलाह देने वाला, उनका पथ-निर्देशन करने वाला कोई नहीं था इसलिये राष्ट्र की आवश्यकता को समझकर उन्होंने इस पद को सम्भाला था।

प्रतिभा :–

चाणक्य बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे, इसीलिए उस काल में भी जबकि चतुर्दिक सत्प्रवृत्तियों का तीव्रगति से ह्रास हो रहा था एवं चरित्रहीनता तथा अराष्ट्रीयता अपनी चरमावस्था को प्राप्त हो रही थी, ऐसे समय आपने राष्ट्रीयता का आह्वान करके विश्रृंखलित गणराज्य को एक सुदृढ़ राष्ट्र का स्वरूप प्रदान किया। शासन-व्यवस्था में सहायक ग्रंथ "कौटिल्य का अर्थशास्त्र" का प्रणयन पूर्णता के साथ कर देना उनकी सर्वोकृष्ट विद्वत्ता का परिचायक है। उन्होंने एक-एक पक्ष को अत्यन्त सूक्ष्मता और सहजता से स्पष्ट किया है।

दूरदर्शिता :—उन्होंने अपने में इस गुण को बहुत प्रकार से समाहित कर लिया था। यही कारण था कि उन्होंने पहले ही पहचान लिया था, जब तक भारत के यह छोटे-छोटे गणराज्य एक होकर कार्य नहीं करते तब तक कोई भी कार्य सफल होना असम्भव है। इसीलिए अश्वक अश्वाहक, क्षुद्रक, मालव आदि जैसे अनेक छोटे-छोटे गणराज्यों में होने वाली परस्पर शत्रुता को मिटाकर उन्हें एक सूत्र में बाँधकर अपना उत्कृष्ट उद्देश्य पूर्ण किया।

विशाल-हृदयता—कौटिल्य का हृदय वास्तव में एक विशाल हृदय था, यही कारण था कि उन्होंने चन्द्रगुप्त का विवाह सिल्यूकस की पुत्री 'हेलन' से कराया था, जिसमें जाति-पाँति का भेद-भाव स्पर्श तक नहीं कर गया था।

एक और भी उदाहरण उनके इस गुण का दृष्टव्य है, जब सिल्यूकस बन्दी बना लिया गया था, उस समय भी उन्होंने उसे क्षमा कर दिया था, उस समय भी उसको क्षमा कर दिया था। ऐसा करना उनकी दूरदर्शिता का भी है जिससे यूनानी लोग भारतीयों को हृदय से आदर प्रदान करें।

इस प्रकार इन उदाहरणों से उनकी परदुःखकातरता और दूरदर्शिता का पुष्ट प्रमाण मिलता है।

संगठन-कौशल:—नव जवानों में अपने देश के प्रति सुप्तावस्था में पड़ी हुयी भावनाओं को जाग्रत करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया और चन्द्रगुप्त को शासक बनाने का निर्णय किया। इस बात का उन्होंने विशेष ध्यान रखा कि किसी के मन में चन्द्रगुप्त के प्रति अश्रद्धा तो नहीं निर्मित हो रही है, इसके लिये उन्होंने प्रयत्नपूर्वक सबके हृदय में चन्द्रगुप्त के लिए आदर का स्थान बना दिया। यही नहीं इस आदर के कारण चन्द्रगुप्त में अहंकारी प्रवृत्ति का समावेश न हो जाय इसलिए चन्द्रगुप्त को भी ऐसा बनाया कि वह सभी का उतिच सम्मान करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके द्वारा किया गया संगठन कार्य कहीं से शिथिल नहीं था।

योजकता :– किस व्यक्ति का कहाँ पर सही उपयोग

हो सकता है, यह भी चाणक्य भली प्रकार जानते थे। इनकी योजना-शक्ति अत्यधिक प्रबल थी। संगठन-कार्य से पहले योजकता की अत्यावश्यकता होती है। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति का विभाजन उसमें अन्तर्निहित शक्तियों के आधार पर किया था और यही कारण था कि उनके द्वारा किये गए कार्य पर्याप्त मात्रा में सफल होते थे।

इनकी योजकता का निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य है :—

संगठन-कार्य को सफल बनाने के लिये उन्होंने मालव गणराज्य का नेतृत्वकर्त्ता चन्द्रगुप्त को बनाकर भेजा और क्षुद्रक गणराज्य में अपना संगठन पूरा करने के लिये मालवकुमार सिंहरण को भेजा जिससे कि इन दोनों गणराज्यों का संगठन हो जाये। दोनों ही वीर जातियाँ थीं। ये दोनों जातियाँ एक साथ मिलकर कभी नहीं लड़ीं थीं, अपितु परस्पर ही एक दूसरे से लड़ा करती थीं। उन दोनों का संगठन करके चाणक्य ने सिकन्दर की सम्पूर्ण सेना के दांत खट्टे कर दिये। मालव राजकुमार सिंहरण को मालवों में न भेजकर क्षुद्रकों में भेजा, यही इनकी सूझ-बूझ का उदाहरण है।

इस प्रकार हमको ज्ञात होता है कि जिस समय छोटे छोटे गणराज्य आपस में युद्ध करके अपना शक्ति क्षय कर रहे थे एवं उनका ध्यान राष्ट्र तक जाता भी न था, ऐसे समय में उन्होंने राष्ट्र जैसी श्रेष्ठ भावना को उद्दीप्त किया तथा उस प्रसुप्त समाज को नव चेतना प्रदान की। तथा पुनः भारत वसुन्धरा के प्रत्येक अंग को, जो कि तितर-बितर हो गये थे, एक सूत्र में गूँथ दिया।

वर्तमान-काल में चाणक्य जैसे व्यक्ति की अत्यावश्यकता है। आज अपना देश देखने में तो राष्ट्र लगता है लेकिन स्वार्थपरता, कलह और विघटन सब ओर उसी प्रकार से व्याप्त है, अतः यदि राष्ट्र को समुन्नत एवं सुसंमृद्ध बनाना है तो चाणक्य-नीति की धारा प्रत्येक ओर संचरित करनी पड़ेगी और तभी देश पुनः जागृत होकर विश्व के समक्ष स्वाभिमान के साथ अपना मस्तक ऊँचा करके खड़ा रह सकेगा।

एक समर्पित जीवन

—यशवन्त सिंह, 'एकादश'
(विज्ञान)

आज मैं आप सबको एक महान् व्यक्तित्व का परिचय कराऊँगा, जो न ही कोई राजा था, न राजकुमार, न किसी धनाढ्य परिवार का और न कोई प्रख्यात मनीषी, विद्वान अथवा राजनीति-वेत्ता। वह व्यक्ति जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्त सिंह की सेना के एक सामान्य सैनिक का पुत्र था, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन देश, धर्म और राष्ट्र के लिये समर्पित कर दिया। उस पराक्रमी एवं निःस्वार्थी व्यक्ति ने अनेक स्थानों पर महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की; परन्तु किसी भी भूखण्ड के राज-सिंहासन पर अपना राज-तिलक नहीं करवाया।

जब इस व्यक्ति के पिता ने उज्जैन के युद्ध में वीर-गति प्राप्त की, तो उस समय इसकी उम्र केवल पन्द्रह वर्ष की थी। यह अपनी विधवा माँ तथा एक छोटे भाई के साथ निराश्रित हो गया। माँ ने उनको अपनी जीविकोपार्जन के लिये राजा के पास भेजना चाहा और चाहा कि वह अपने पिता के अधिकार माँगे; किन्तु इस स्वाभिमानी व्यक्ति ने माँ से कहा—"कि मैं कभी भी किसी भी महाराज के पास याचना करने नहीं जाऊँगा। मैं किसी से भी याचना करना अपने लिये लज्जा की बात समझता हूँ। मैं अपनी शक्ति, प्रतिभा एवं विद्वता के द्वारा स्वतः ही अपना स्थान बना लूँगा।" और वास्तव में उस व्यक्ति ने भारतवर्ष के इतिहास में अपना एक ऐसा स्थान बना लिया, जिसे शायद कालचक्र भी मिटाने में समर्थ न होगा। एक समय ऐसा आया जब वह अपने ही सत्कर्मों से मारवाड़ का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दू समाज का आशा केन्द्र बन गया। इसका नाम था वीर दुर्गादास।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् राजवंश के उत्तराधिकारी एक मात्र अजीत सिंह ही थे। वे अभी पूर्ण रूप से समझदार नहीं थे। अतः उनका कार्य भार भी दुर्गादास जी के कंधों पर ही आया और इस कर्तव्य का निर्वाह उसने जिस निष्ठा और लगन से किया वह हमारे इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ बन गया है। दिल्ली के अत्याचारी, दुष्ट और आततायी राजाओं की हर एक कूटनीतिक चाल और सैन्य शक्ति की चुनौती को स्वीकार करते हुये उन शत्रुओं का सामना उसने अपने ही पराक्रम के साथ किया। अपने ही बाहुबल एवं बुद्धिबल से मुगलों की जागीरें छीनकर उनके अत्याचारों से पीड़ित-प्रताड़ित जनता को मुक्ति दिलाकर सम्पूर्ण मारवाड को परतन्त्रता की जंजीरों से छुड़ाया। दिल्ली के बादशाह औरंगजेब को अपमानित कर उसकी सम्पूर्ण शक्तियों को धूल चटाकर हिन्दू धर्म ध्वजा को फहराया।

दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने दुर्गादास जी को बुलाकर कहा कि "भाई दुर्गादास जी मैं अपने मित्र जसवन्त सिंह के इस इकलौते नाबालिग बच्चे पर अचानक टूटे हुये पहाड़ के भार को सहन करने की क्षमता न देखकर बेचैन हूँ। मैं इस लापरवाही को बरदाश्त करने के लिये असमर्थ हूँ। अतः मैं अपनी ही

आँखों के सम्मुख बच्चे का पालन-पोषण कराऊँगा और बालिग हो जाने पर इसे जोधपुर की गद्दी पर आसीन करवा दूँगा । अतः तुम अजीत सिंह को शीघ्र ही शाही महलों में पहुँचा दो, जिससे कि मैं अपने दोस्त के लिये अपना फर्ज अदा कर सकूँ ।

दुर्गादास जी औरंगजेब की इन बातों को सुनते-सुनते अपने मन में विचार कर रहे थे कि मूर्ख, आततायी ! मैं तुझसे अच्छी तरह परिचित हूँ । तूने किस प्रकार महाराज को सम्पूर्ण जीवन भर भयंकर युद्धों में लगाये रखा और उनकी शक्ति को क्षीण किया । सेना का संहार हुआ इतना ही नहीं उनके दो पुत्रों को वीरगति प्राप्त हुई । तूने जोधपुर के हिन्दू साम्राज्य को प्रकाशित करने वाले कुल दीपक को बुझा दिया । इस अन्तिम निशानी को भी क्या तू चैन नहीं लेने देगा । किन्तु हे ! नीच, पापी क्या तुझे यह नहीं मालूम कि हिन्दू वीर को संसार का कोई भी प्रलोभन विचलित नहीं कर सकता । जोधपुर में दुर्गादास जी ने अपने मित्रों से परामर्श की और एक सँपेरे की सहायता से युवराज अजीत सिंह को सुरक्षित स्थान पर पहुँचादिया । कुछ दिनों बाद औरंगजेब से कहलवाया "जहाँपनाह आपका विचार तो हम सबको मंजूर है, किन्तु रानी का कहना है कि बच्चा अभी माँ का दूध पीता है अतः वह बिना माँ के नहीं रह सकता और मैं उसे लेकर मुसलमान घर में नहीं जाऊँगी । यह हमारे पतिव्रत धर्म के विरुद्ध है । एक साल तक बच्चे को अपने साथ रखूँगी । जब बच्चे का दूध छूट जाये तो उसके हित में बादशाह को सौंप दूँगी ।

इस प्रकार एक वर्ष के इस समय को व्यर्थ न गँवाकर भविष्य में आने वाले संघर्ष की तैयारी में मारवाड़ के गाँव घूम-घूम कर हजारों युवकों से उसने सम्पर्क स्थापित किया । देश और धर्म की रक्षा के लिये उन्हें प्रेरित किया । राजाओं, सामन्तों, जमींदारों, सरदारों तथा अन्य युवकों से मिले । उन्हें जीवन का वास्तविक अर्थ समझाकर उनकी वासनाओं से दूर किया । और उनको उदात्त लक्ष्य के लिये प्रेरणा भी दी । इस प्रकार भविष्य में आने वाले संघर्ष के लिये एक सुदृढ़ संगठन का निर्माण किया । इस संगठन को पूर्ण करने के लिये उसने अपनी भूख, प्यास, विश्राम तथा निद्रा किसी की भी चिन्ता नहीं की । कई बार प्राणों का संकट भी आया । इस परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि मारवाड़ और राजस्थान के चारों ओर देश और धर्म के प्रति अटल निष्ठा वाले वीर फैल गये ।

वीर दुर्गादास का जीवन अत्यन्त प्रेरणास्पद घटनाओं से परिपूर्ण है । वे लक्ष्य के मार्ग में आयी हुई बाधा में कभी इतने नहीं उलझे कि वह लक्ष्य ही ओझल हो गया हो । बाधाओं का समुचित निराकरण करते हुये वे लक्ष्य की ओर अग्रसर होते चले गये ।

मुगल सेनापति दिलावर खाँ को हथियार डालने के लिये बाध्य होना पड़ा, किन्तु दिल्ली ने फिर धोखा किया इधर दिलावर खाँ द्वारा सन्धि वार्ता चलती रही, उधर दिल्ली से ४०००० हजार की सेना पुनः आक्रमण के लिये रवाना कर दी गई । किन्तु सारे राजस्थान में जो जागृति और संगठन दुर्गादास कर चुके थे, उसने पग-पग पर उस सेना से लोहा लिया । गुरिल्ला युद्धों से वह सम्पूर्ण सेना मार्ग में ही तबाह हो गई ।

एक विशेष विजय के बाद सभी लोग चाहते थे कि वह गद्दी पर बैठें । दुर्गादास से इस कार्य के लिये आग्रह किये गये किन्तु दुर्गादास ने यही उत्तर दिया कि गद्दी के मालिक अजीत सिंह हैं । अन्ततः दुर्गादास भगवद्-भजन के लिये काशी चले गये ।

कितनी सही कितनी गलत ?

न्यूट्रान बम की खोज

—प्रकाश शर्मा, एकादश (विज्ञान)

घमासान युद्ध छिड़ा हुआ है, एक देश ने मौके का फायदा उठाते हुये अपने दुश्मन पर बम गिरा दिया।

बम गिरा, विस्फोट हुआ, साथ ही करोड़ों की संख्या में न्यूट्रान तेज रफ्तार से इधर-उधर भागने लगे, इस बौछार के परिणाम स्वरूप कुछ लोग उसी वक्त, कुछ लोग कुछ घन्टों में और शेष कुछ दिनों में अपना जीवन त्याग बैठे। शत्रु का सफाया हो गया; किन्तु किसी भी प्रकार की भौतिक हानि नहीं हुई, इमारतें, कारखाने सब वैसे के वैसे। आक्रमणकारी दल ने बाद में इस पर कब्जा कर लिया।

यह सब युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गयी किसी कथा का अंश लगता है ; किन्तु यह वास्तविकता है, यह कहानी नहीं है। हाल ही में अमेरिका में किये गये एक परीक्षण ने इसकी पुष्टि की है। यह है, आधुनिकतम टेक्नालॉजी का परिणाम—"न्यूट्रान बम"।

इससे पूर्व कि हम यह जानने की कोशिश करें कि यह है क्या बला, हमारे लिए यह जानना आवश्यक होगा कि न्यूट्रान क्या है ? जो इतनी बिनाश-लीला का मूल है। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

परमाणु के नाभिक के दो घटक होते हैं—प्रोटान और न्यूट्रान। प्रोटान धनावेशित होता है तथ न्यूट्रान पर कोई आवेश नहीं होता। इन्हें आजकल की भाषा के अनुसार हम चाहें तो गुटनिरपेक्ष या उदासीन भी कह सकते हैं, इनके स्वास्थ्य पर कोई फर्क नहीं। १९३२ में ब्रितानी भौतिकविद जेम्स चेडविल ने इसको खोज निकाला। कोई आवेश न होने के कारण, विस्फोट होने पर ये बड़ी लम्बी यात्राओं पर निकलते हैं। इनको किसी दुनियादारी से सरोकार नहीं ; किन्तु कभी-कभी हवा में उपस्थित हाइड्रोजन, आक्सीजन, कार्बन तथा नाइट्रोजन के परमाणुओं से मुलाकात कर लेते हैं। यद्यपि इस भेंट से इनकी रफ्तार कम हो जाती, रास्ता बदल जाता है, फिर भी एक छोटे बम से विस्फोटित न्यूट्रान लगभग १६ किमी. तक की यात्रा कर लेते हैं। जो भी लपेट में आया वह गया। वैसे इनकी किसी से कोई दुश्मनी नहीं है किन्तु क्या करें सृष्टि ने स्वभाव ही ऐसा दिया है।

न्यूट्रान बम की कार्य प्रणाली क्या है ? यह जानने के लिये परमाणु-बम और हाइड्रोजन-बम की जानकारी भी आवश्यक है।

हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम जैसे बमों में यूरेनियम या प्लूटोनियम परमाणु का विखण्डन होता है। लेकिन हाइड्रोजन बम में भारी हाइड्रोजन परमाणुओं का केवल मिलन ही नहीं होता, जैसा कि लगता है। हाइड्रोजन बम मे संलयन प्रक्रिया अवश्य होती है, लेकिन उसको शुरू करने के लिये पहले विघटन आवश्यक

होता है। संलयन प्रक्रिया के बाद फिर विघटन होता है। वस्तुतः इन शक्तिशाली बमों की अधिकतम शक्ति इसी अन्तिम विघटन से निकलती है।

आरम्भ की विघटन प्रक्रिया से इतना ताप पैदा होता है कि भारी हाइड्रोजन परमाणु आपस मे मिल जाते हैं। इस संलयन से भारी मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है। विघटन का पहला चरण यूरेनियम २३५, यूरेनियम २३८ या प्लूटोनियम जैसे तत्वों में होता है। दूसरे चरण में जब हाइड्रोजन परमाणु आपस में मिल जाते हैं, उस समय बहुत अधिक वेग वाले न्यूट्रानों की बौछार होती है जो कि यूरेनियम २३८ को भी विघटित कर देती है। हाइड्रोजन बम की शक्ति को बढ़ाने के लिए उसकी विस्फोटक शक्ति को भी बढ़ाना बहुत आवश्यक है।

किन्तु एक सवाल जो बहुत समय से वैज्ञानिकों के लिये समस्या बना हुआ है, वह है कि क्या पहली विघटन प्रक्रिया से छुट्टी मिल सकती है ? यह प्रश्न वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिलचस्प तो है ही साथ ही सेना के उपयोग के लिए भी बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इससे प्रथम तो यह लाभ है कि अस्त्र को आकार में और कम किया जा सकता है, जो कि टेक्निकल प्रयोग के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकता है। दूसरे विघटन वाले बम के विस्फोट से निकले रेडियोएक्टिव पदार्थ पृथ्वी और हवा की हर वस्तु को समूल नष्ट कर देते हैं। बिना विघटन वाला बम इस दृष्टि से स्वच्छ होगा। न्यूक्लीय विघटन से निकले पदार्थ रेडियो सक्रिय होते हैं; किन्तु न्यूक्लीय संलयन से निकले पदार्थ रेडियो–एक्टिव नहीं होते हैं। इतना जरूर है कि संलयन प्रक्रिया में तेजी से निकले न्यूट्रान वायु में उपस्थित नाइट्रोजन जैसे पदार्थों से मिल कर रेडियो एक्टिव हो जाते हैं, किन्तु वे इतने प्रभावशाली नही होते हैं। सैन्य दृष्टि से इस प्रकार के शुद्ध विस्फोटों के पश्चात् दुश्मन के आवासों, कारखानों पर शीघ्र ही आधिपत्य जमाया जा सकता है जब कि विघटनीय बम के विस्फोट के बाद वह क्षेत्र रहने योग्य ही नहीं रह जाता।

यही सिद्धान्त न्यूट्रान-बम का है। विघटन वाले बम से चार प्रकार का विध्वंस होता है। विस्फोट से इमारतें भवन इत्यादि ढह जायेंगे। ताप-तरंगों से स्वयं ही आग लग जायेगी और न्यूट्रानों का विकिरण जन-जीवन को समप्त कर देगा; किन्तु न्यूट्रान-बम से विस्फोट-तरंगें तथा ताप-तरंगें न के बराबर निकलेंगी, केवल न्यूट्रानों का विकिरण होगा, जिससे बिना किसी भौतिक हानि के जन-जीवन की समाप्ति हो जायेगी।

मनुष्यों और जीव-जन्तुओं को चुनकर मारने वाला यह बम कैसे यह सब करता है ? आइये यह देखें। यह भी जहरीली गैसों की ही भाँति है। यह तीन क्षेत्रों में असर करेगा, सबसे निकट वाले क्षेत्र में तुरन्त ही मौत हो जायेगी। दूसरे क्षेत्र में रहने वाले लोग कुछ दिनों के अन्दर समाप्त हो जायेंगे। इन क्षेत्रों के लोगों को पहले चक्कर आयेंगे तथा बाद में बेहोश होकर मृत्यु हो जायेगी। तीसरा क्षेत्र विकिरण वाला होगा। इसमें एक-दो वर्ष के अन्दर विभिन्न कारणों से ७० प्रतिशत मौतें होंगी, कैन्सर सामान्यतया पाया जायेगा। बचे लोग असमय वृद्ध हो जायेंगे। इस प्रकार न्यूट्रान बम जीवन को पुरी तरह खत्म कर देने वाला भयावह अस्त्र है।

कैसा अमानवीय अस्त्र है यह ? युद्ध की राजनीति चाहे जो माँग करती हो और शक्ति-सन्तुलन के नाम पर चाहे जो किया जाये। मानव-जीवन का यह अवमूल्यन कितना उचित है ? चाहे जितने दावे किये जायें, यह बम किसी भी परमाणु-बम से कम गन्दा नहीं है। एक ओर जहाँ परमाणु-अस्त्रों के प्रसार पर रोक लगाने की बात कही जा रही है, वहीं दूसरी ओर ऐसे खतरनाक अस्त्रों के निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है। यह कहना कि इन अस्त्रों को सिर्फ अपने पास रखेंगे, पूर्णतया गलत है। इनका अस्तित्व विशेषकर तब, जब इनको स्वच्छ बम बताया जा रहा है, इनके उपयोग को बढ़ावा देगा और इस तरह एक खतरनाक स्थिति पैदा हो जायेगी। यही कारण है कि न्यूट्रान-बम अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का विषय बन गया है और इसकी कटु आलोचना की जा रही है, जो कि अपने आप में सही है। हमारे विदेश मन्त्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने भी इसकी तीखी आलोचना की है।

समवेत-नीराजन

विखराव

—ज्ञानेन्द्र शर्मा 'अज्ञात'

सब कुछ टूट रहा है
फूट रहा है;
समाचार पत्र भी
इस टूट-फूट को छापते-छापते
थक गए हैं ।
लेकिन छापना पड़ता ही है
क्योंकि यही वास्तविकता है ।

बजट में घाटे
वर्षानुवर्ष प्रगति पर हैं;
क्योंकि हमारी योजनाओं की नींव
गहराई तक धँस गई है ।

सब मिला कर
निर्माण कम हैं—विनाश अधिक ।
गड़बड़ कहाँ है ? और
कहाँ से यह फूटन प्रारम्भ हुई ?
जो भी खुली आंखों से
देखना चाहेगा
उसे दिखेगा

हम तुम सब फूटे पड़े हैं
चारों ओर
आपाधापी मची है क्योंकि
दाम-दाम की लूट है
लूट सके तो लूट ।

और हम अमीर हो रहे हैं
देश गरीब हो रहा है ।
किसे इस गरीब की फिक्र है
इसका घर टपक रहा है
दीवारें सभी ध्वस्त हैं
नींव हिल रही है
ईंटें जगह छोड़ रही हैं ।

जब सब कुछ ढह जायगा
तब हमें होश आयेगा
क्योंकि हम आग लगने पर
कुँआ खोदने के आदी हैं ।

हमें अपने जीवन में
गड्ढे करने होंगे
इन गड्ढों में ही उस ढहते मकान
की नई नींवें पड़ेंगी
हम सबके परिश्रम की ईंटें
इसको शिखर तक सजाएँगी

और इस
भव्य राष्ट्र-मन्दिर
का पुनर्निर्माण होगा ।

मानस-संत तुलसीदास की पुण्य-स्मृति में—

बाँधो अवश्य सेतु!

-विश्वबन्धु

तुम अगर कण्टक हो,
चुभना हो तुम्हारी नियति
और किसी की पीड़ा को गहराना—
तुम्हारी रचना-धर्मिता
तो भी इसे छल नहीं मानूँगा
यदि तुम्हारी नोंक पर हो—
एक पावन शब्द 'राम!'

तुम अगर सर्प हो,
डसना हो तुम्हारा रोजनामचा
और किसी की काया को
मृत्यु की नीलाहट बाँटना—
तुम्हारा आदर्श;
तब भी इसे कपट नहीं कहूँगा
यदि तुम्हारी जिह्वा पर—
बैठा हो कोई 'राम बोला!'

केवल इसलिए
कि 'स्वांतः सुखाय' की
अटपटी शैली वाला वह 'मानस का संत'—
किसी कोण से उग आया है
मेरे अंदर;

बता गया है तब से वह—
ढेर सारी व्यथा-कथा :

कहता है कि—
तब भी ऐसे ही दरबार थे
जी हुजूरी,
अवसरवाद,
नवनीत-लेपन की दुर्गन्ध बिखेरते;
ऐसी ही साँसें थीं
छलनी-छलनी करने वाली,
ऐसे ही रिश्ते थे—
काँच की तरह चटखते,
ऐसे ही चेहरे थे—
घृणा की मुस्कानें फेंकते हुए।

कहता है कि—
तब देह में पीर बहुत होती थी;
हर कहीं होती थी :
बाँह, छाती, पेट, बाहुमूल सब कहीं
लेकिन इसके बावजूद—
वह करिश्मा करना ही पड़ता था—
पीर, आह, दुःखदर्द, के कालकूट को

पचाकर अमृत बाँटने का !

कहता है कि—
युग-परिवेश
हर समय धुँधुँआता ही मिलता है;
कुंठा-संत्रास के अजगर
हर काल में रेंगते हैं;
चोरों, जुआरियों और लम्पटों की
मटमैली बाढ़ भी
हर समाज झेलता है।
किंतु फर्क केवल इतना है कि—
मैं ऐसे कालिख लगे समय में भी
अवधेश के चार बालकों को
मन-मन्दिर में बिहरा सका !
दुर्जेय 'अहं' का जो धरे हुये थे दसशीश
उन्हें मिट्टी में मिलाने का
आत्मतोष तो पा सका !!

कहता है कि—
तुम कटे हुए डैनों वाली
लाचार दुनियाँ में
अपने अस्तित्व के अपहृत हो जाने पर भी—
ढ़ूंढ़ो जरूर कोई
'आस्था' का 'ऋष्यमूक !'
भेंटो अविलम्ब, कोई
'संतुलन' का 'सुग्रीव !'
बाँधो अवश्य सेतु
इस हिकारत से घूरते समुद्र पर
और बेध डालो
उनकी लंका को—
उसके समस्त सुविधा के स्वर्णिम परकोटों
सहित।
और आरोहित करो—
अपने अपहृत अस्तित्व को
अटल विश्वास के 'पुष्पक विमान' पर !!

"समन्वय के भाव को परिपुष्ट बनाने के लिए सहिष्णुता का होना आवश्यक है। सहिष्णुता भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

"जो असंयमी हैं, वह अपनी इच्छाओं पर कभी काबू नहीं पा सकता उनकी पूर्ति के लिए वह बाकी लोगों की कुछ भी चिन्ता न करता हुआ सब प्रकार से प्रयत्न करेगा यदि सफल हो गया तो वह अपने क्षेत्र में एकाधिपत्य प्रतिष्ठापित कर लोकतन्त्र की हत्या कर देगा। यदि असफल हुआ तो उसके लिए लोकतन्त्र रसहीन एवं दुःखदायी हो जायगा।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

तुम्हारे कार्यों ने दी है सतत् प्रेरणा............

[आचार्य का सही दिशा में प्रेरक चिन्तन]

—दीपक राजे, आचार्य

वर्ष १९७५ सितम्बर मास। वीणा-पाणिनि माँ शारदा एवं राम-दूत पवन तनय हनुमान की वन्दना के उपरान्त स्वस्थान की आज्ञा अनुशासक द्वारा। पीछे खड़ा कर रहा था निरीक्षण वेश का। जो छात्र वेश में नहीं थे दे रहे थे अपना स्पष्टीकरण। सभी छात्र कक्षाओं में। प्रारम्भ सदाचार बेला का। मैं भी अपनी कक्षा में। तभी एक छात्र पास आकर कहता है—आचार्य जी! नाराज तो न होंगे तो एक बात कहूँ। मैंने कहा—अवश्य। बड़े ही संकोचवश वह बोला—आचार्य जी! आप हमें वेश हेतु टोकते हैं लेकिन आपका वेश……… बात को काटते हुए बोला—ठीक है। इस प्रसंग ने दी एक नवीन प्रेरणा। कथनी एव करनी के अन्तर को पाटने की।

× × ×

बेला गणित विषय की। वर्गमूल का अध्यापन कर रहा था। श्यामपट पर ·१ का वर्गमूल निकालने की विधि रहा था समझा। ·१ का वर्गमूल ·३ होता है। इस उक्ति पर एक बालक खड़ा होकर प्रश्न कर उठता है—"आचार्य जी! ८१ का वर्गमूल ९, ६४ का ८, ४९ का ७ इस प्रकार वर्गमूल घटता जाता है, पर क्या कारण है कि ·१ का वर्गमूल ·३, ·२५ का ·५ इस प्रकार से बर्गमूल बढ़ता जाता है?"

बाल-मन से इस प्रकार के अस्वाभाविक प्रश्न को सुन आवाक् था। अचानक तभी टन–टन–टन घन्टी के तीन ठोके लगे। अगली बेला का प्रारम्भ हुआ। प्रश्न को मानस पटल पर अंकित कर चल पड़ा अगली कक्षा की ओर। पर इस अस्वाभाविक प्रश्न ने मुझे यह प्रेरणा प्रदान की कि विषय वस्तु के प्रतिपादन के समय उठने वाले समस्त ऐसे अटपटे किन्तु उत्प्रेरक प्रश्नों का पहले ही विचार किया करूँ।

× × ×

आपातकालीन स्थिति में अनेकानेक परिवार त्रस्त थे। अपने इस विद्यालय के छात्रों के परिवार इनसे अछूते न थे। इन्हीं परिवारों में से एक परिवार के एक छात्र का नाम शुल्क न आने के कारण पृथक। कारण पता लगने पर पूछा तो एक ही उत्तर—"माता जी ने रुपया भेज दिया होगा। आता ही होगा।" लगातार दस दिन यही उत्तर। पर समस्याओं के बीच शुल्क आता कहाँ से? हर बार एक अत्यन्त ही धैर्यशील व्यक्ति की भाँति उत्तर—उस बाल मन से। इस प्रसंग ने भी मुझे एक दिया सम्बल। जिसके आधार पर मैं भी आपातकालीन झंझावतों से टकराने में समर्थ रहा।

प्रसाद का प्रकृति-चित्रण

—रामतीर्थ मिश्र, एम०ए०, बी०एड०, आचार्य

हिन्दी-साहित्य में समय-समय पर अनेक मनीषियों ने अपना योगदान कर हिन्दी साहित्य के कलेवर में अभिवृद्धि की है, ऐसे ही कलाकारों में कविवर प्रसाद का नाम अग्रगण्य है। प्रसाद हिन्दी काव्य-कानन के कमनीय कुसुम हैं, जिसकी सुरभि ने हिन्दी-साहित्य को सुरभित किया है। प्रसाद ने हिन्दी काव्य-जगत् को नवीन विषय, व्यापक दृष्टिकोण और नवीन दिशा प्रदान कर जो उपकार किया है, उसके लिये समग्र हिन्दी जगत् उनका चिर ऋणी रहेगा। प्रकृति मानव की चिर-संगिनी रही है। सृष्टि में नेत्रोन्मीलन करने वाले प्रत्येक मानव को प्रकृति का आश्रय ही सर्व प्रथम मिला है। मानव और प्रकृति का शाश्वत सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि प्रत्येक कवि को प्रकृति ने प्रभावित किया है और प्रकृति वर्णन स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हुआ है।

प्रसाद प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। उनका काव्य प्रकृति के विविध रूपों से आप्लावित है। प्राकृतिक स्थलों की यात्रा के फलस्वरूप उन्हें प्रकृति के विभिन्न सौन्दर्यों की अनुभूति हुयी थी। उनके प्रकृति प्रेम के दर्शन उनके प्रारम्भिक काव्यों से लेकर कामायनी तक में प्राप्त होते हैं। प्रसाद के प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है—"प्रकृति का उनके काव्य में विशेष महत्व है। वह किसी पात्र के सुख, दुःख की सहचरी नहीं अपितु स्वयं सत्ताधारिणी है। उसका अपना सौन्दर्य है, अपने भाव हैं। प्रकृति एक जीवन पात्र की ही भाँति उनके काव्य में समाविष्ट हुई है।"

कविवर प्रसाद ने प्रकृति का चित्रण अनेक रूपों में सजीव तथा स्वाभाविक रूप से चित्रित किया है जो मर्म स्पर्शी एवं मनोहर है। उनके प्रकृति चित्रण के विविध रूपों का विवरण इस प्रकार है :—

आलम्बन रूप में :—प्रकृति का यथातथ्य चित्रण आलम्बन रूप के अन्तर्गत आता है। प्रसाद ने इस रूप में प्रकृति का चित्रण किया अवश्य है, परन्तु अधिक मात्रा में नहीं। इस रूप में प्रसाद ने प्रकृति का वर्णन कोमल एवं भयानक दोनों ही रूपों में किया है। कोमल रूप में प्रकृति का उदाहरण देखिए :—

'स्वर्ण शालियों की कलमे थीं,
दूर-दूर तक फैल रही।"

भयानक रूप में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार है :—

"पंचभूत का भैरव मिश्रण,
शंपाओं का सकल निपात।"

उद्दीपन रूप में :—प्रकृति के जिस रूप से मानव की भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं वहाँ उद्दीपन रूप प्रकृति की

छटा दृष्टिगोचर होती है। प्रसाद ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है :—

"मधुमय बसन्त जीवन वन के,
बह अन्तरिक्ष की लहरों में।
कब आये थे तुम चुपके से,
रजनी के पिछले पहरों में।।"

पृष्ठभूमि के रूप में :—जब कवि अपने विचारों अथवा भावनाओं का प्रकटन करने के लिए प्रकृति के वातावरण का सृजन करता है, वहाँ पर प्रकृति पृष्ठ-भूमि के रूप में दृष्टिगत होती है। प्रकृति के इस रूप का चित्रण प्रसाद ने कामायनी के आदि में चित्रित करते हुये लिखा है :—

"हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।।"

अलंकार रूप में :—अलंकार ही किसी काव्य को जीवन्त बनाते हैं। मानवीय सौन्दर्यों की अवतारणा करने के लिये कवि को प्रकृति के आलंकारिक रूप का आश्रय लेना पड़ता है। कवियों ने प्रकृति के अनेक उपादानों को उपमान के रूप में ग्रहण किया। प्रसाद द्वारा वर्णित इस रूप में श्रद्धा का सौन्दर्य अप्रतिम है—

"नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।।"

संवेदनात्मक रूप में :—जब प्रकृति मानव के दुःख और सुख में एकाकार दृष्टिगत होती है तब प्रकृति को संवेदनशील कहा जाता है। इस रूप में प्रकृति सचेतन हो जाती है। प्रेमोन्मत्त मनु को प्रकृति हँसती हुई सी आभासित होती है :—

"सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग।
राग रंजित चन्द्रमा भी उड़ा सुमन पराग।।"

उपदेशिका रूप में :—जब प्रकृति उपदेशक बाना धारण कर लेती है तब इस रूप के दर्शन होते हैं। भक्त कवियों जैसे तुलसी आदि ने प्रकृति को इस रूप में अधिकता से देखा है। प्रसाद ने यद्यपि प्रकृति के इस रूप का चित्रण कम किया है, पर बच नहीं सके हैं :—

"प्रकृति के यौवन का श्रृङ्गार,
करेंगे कभी न बासी फूल।"

मानवीकरण रूप में :—छायावादी कवियों ने प्रकृति को इस रूप में सर्वाधिक चित्रित किया है। प्रकृति में जब मानवीय भावनाओं का आरोपण कर उसे सचेतन रूप में चित्रित किया जाता है तब मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण कहा जाता है, यथा—

"पगली! हाँ, सम्हाल ले कैसे,
छूट पड़ा तेरा अंचल?
देख बिखरती है मणि राजी,
अरी, उठा बेसुध चंचल।"

परोक्ष की अभिव्यक्ति के रूप में :—प्रसाद के काव्य में कहीं-कहीं पर प्रकृति के इस रूप के भी दर्शन होते हैं। प्रसाद ने प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक सत्ता का भी आभास कराया है। उदाहरणार्थ—

"अपने सुख दुख में पुलकित,
यह मूर्त्ति रूप सचराचर।
चित का विराट् वपु मंगल,
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।।"

रहस्यात्मक रूप में :—प्रसाद रहस्यवादी कवि हैं और यही कारण है कि उनके प्रकृति चित्रण में रहस्य-भावना के दर्शन होते हैं। उनका विश्वास है कि इस सृष्टि का संचालन करने वाली कोई अलौकिक सत्ता है।

इसी भावना से समन्वित प्रकृति का निम्नांकित रूप दृष्टव्य है--

"हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम,
कुछ हो ऐसा होता भान।
मन्द-गम्भीर-धीर स्वर संयुत,
यही कर रहा सागर गान ।।"

प्रतीक योजना के रूप में :—प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति का चित्रण छायावादी कवियों की विशेषता है। यही कारण है कि प्रसाद के काव्यों में भी प्रतीक योजना के चित्रण दृष्टिगोचर होते हैं। प्रसाद ने 'आँसू' काव्य में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

"शशि मुख पर घूँघट डाले,
अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आये ।।"

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि प्रसाद प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। प्रसाद ने प्रकृति को जिस नवीनता और सुन्दरता से अंकित किया है, वह अपने में अद्वितीय है। बाबू जयशंकर प्रसाद ने अपनी कविताओं में प्रकृति का जैसा उपयोग किया है वैसा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रसाद ने अपनी कलाकारिता से प्रकृति को नवीन रूप में सजाकर अधिकाधिक व्यापक और समुन्नत बनाने की भरपूर चेष्टा की है। प्रकृति के मधुर और सुन्दरतम रूपों की जैसी अनुभूति प्रसाद ने की है वैसी अन्य किसी कवि ने नहीं। प्रसाद ने हिन्दी साहित्य में प्रकृति चित्रण का अत्यन्त मार्मिक और व्यापक रूप में चित्रण किया है।

—"प्रत्येक देशभक्त व्यक्ति की ऐसी इच्छा होना स्वभाविक ही है कि अपना देश वैभवशाली बने। राष्ट्र सुखी, सम्पन्न हो। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़े। बेकारी, भुखमरी, बेरोजगारी, अशांति का अन्त हो। न्याय सुलभ हो। आपसी झगड़े समाप्त हों। साम्प्रदायिक, क्षेत्रीय, भाषायी संकुचितताओं से ऊपर उठकर लोगों के सोचने, विचारने का तरीका हो। दलीय अभिनिवेशों से नेतागण मुक्त हों। भारत अपने राष्ट्रीय स्वरूपों में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक सभी प्रकार के क्षेत्रों में लोक-कल्याणी सिद्ध हो। जिसमें ऐसी इच्छा निर्माण नहीं होती हो उसे भारतीय तो क्या मानव कहना भी कठिन है।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्र-यज्ञ

—ओमशङ्कर

[लेखक की एक कृति 'युग पुरुष-आचार्य चाणक्य' का एक उद्बोधक अंश।

दृश्य—१

(सुसज्जित भव्य दरबार। एक भव्य सिंहासन पर पंचनद नरेश अपनी सर्व विदित शान के साथ विराजमान हैं। स्वाभाविक रूप से उनका बायाँ हाथ मूछों की सेवा में लगा है और दाहिना हाथ सिंहासन के दाहिने "स्वर्ण-सिंह" के मस्तक पर रखा है। कुछ दाहिने झुक-कर बैठने से उनका वीरभाव और द्विगुणित हो रहा है। दरबार की निस्तब्धता भंग करते हुये द्वारपाल प्रवेश करता है।)

द्वारपाल :—(हाथ जोड़ कर) महाराज की जय हो! दो अन्तेवासियों के साथ एक योगिराज पधारे हैं।

पंचनद-नरेश :—(उसी भाव से) उन्हें प्रवेश करा सकते हो!

द्वारपाल :—(सिर झुकाकर) जो आज्ञा महाराज!

(आचार्य चाणक्य चन्द्रगुप्त तथा सिंहरण के साथ प्रवेश करते हैं। सन्यासियों की मुद्रा में खड़े होकर नरेश को आशीर्वाद देते हैं। नरेश थोड़ा सा नमित होकर प्रणाम करते हैं। परिचारक सन्यासोचित् आसन की व्यवस्था करता है। तीनों आसीन हो जाते हैं।)

नरेश :—(आचार्य की ओर संकेत करके)

कहाँ से आगमन हो रहा है ऋषिवर!

चाणक्य :—इस समय तो तक्षशिला से आ रहा हूँ राजन्!

नरेश :—ये दोनों परम् मेधा-सम्पन्न अन्तेवासी आपके ही शिष्य हैं न?

चाणक्य :—हाँ राजन्!

नरेश :—आप लोग थके हैं। अतिथिशाला में विश्राम करें।

चाणक्य :—राजन्! आतिथ्य ग्रहण करके विश्राम का सुख भोगने नहीं आया हूँ। हमारा लक्ष्य कुछ भिन्न है।

नरेश :—वह क्या ऋषिवर?

चाणक्य :—वह यह कि विश्वासघात के धूम्र से तक्षशिला घुट रहा है और अब वही घुटन-युक्त राष्ट्र-द्रोही धूम्र पंचनद की ओर भी बढ़ रहा है। इससे सचेत करने के लिये ही मैं आपके दरबार में आया हूँ।

नरेश :—(अतिशय विश्वास और अनभिज्ञता के साथ) विश्वासघात और मेरे राज्य में? ऐसा साहस कौन कर सकता है सन्यासिन्।

चाणक्य :—महाराज! सचेत हों। मेरे कथन का अर्थ समझें। यवन सेना लेकर सिकन्दर भारत की ओर बढ़ चुका है। तक्षशिला के युवराज और अब महाराज आंभीक उसके मित्र और स्वदेश के शत्रु बन चुके हैं।

सीमांत कायरता-पूर्ण सन्देशों से गुन्जित किया जा रहा है और प्रथम प्रहार शस्य श्यामला झेलम के कूलों को ही सहना होगा—ऐसा मेरा अनुमान है।

नरेश :—(ध्यान से सुनता हुआ तथा चाणक्य की मेधा पर चकित सा होकर) आप सन्यासी वेश में राजनीति-विशारद लगते हैं महात्मन् ! क्या आप अपना अनौपचारिक परिचय देना पसन्द करेंगे ?

चाणक्य :—(खीझ कर) महाराज पुरु। यह औपचारिकता-अनौपचारिता का समय नहीं है। आप शीघ्र निर्णय लें। राष्ट्र के सम्मान का ही नहीं, जीवन-मरण का प्रश्न है।

पुरु :—आप इतने अधीर क्यों हो रहे हैं सन्यासिन् ? यह तो वीरों का विनोद है। इस प्रकार के विश्वासघात, देश-द्रोह, युद्ध और मृत्यु तो हम लोगों के नित्य-नैमित्तिक कर्म हैं।

चाणक्य :—नर-पुंगव ! अतिशय विश्वास भी कभी-कभी दुःखद हो जाता है। इस समय सम्पूर्ण राष्ट्र को एक पराक्रमी पुरुष की भाँति खड़ा करना है और आप इसमें अग्रणी बने—यह मेरी इच्छा है।

पुरु :—(कुछ खिन्न होकर कुछ विचित्र से भाव से) अच्छा...............तो आप यह चाहते हैं कि पंचनद नरेश पुरु इस टुच्चे आक्रमण का सामना करने के लिए मगध सदृश राज्यों से सहायता की भीख माँगता घूमे। (जोर से) यह कतई नहीं हो सकता योगिन् ! पुरु अचल हिमालय की भाँति अडिग है। उसे विचलित करने में एक बार साक्षात् यमराज को भी विचार करना पड़ेगा। आप ब्राह्मण हैं न और साथ ही सन्यासी। इसीलिये कदाचित् घबरा जल्दी गये। अच्छा कोई बात नहीं। आप विश्राम करें। मैं स्वयं सारी व्यवस्था कर लूँगा। चिन्तित न हों।

चाणक्य :—(खीझ कर उठता हुआ) वीर-पुंगव ! मैं पुनः सचेत करता हूँ कि, यह आक्रमण स्वदेश के किसी भी सामान्य आक्रमण से सहस्रशः भयानक और कपट-पूर्ण होगा। आप सचेत हों, सतर्क हों, सम्हलें और परिस्थति का सही आकलन करें। मैं चतुर्मासा करने वाला सन्यासी नहीं। कर्मपथ का पथिक हूँ। जीवन-पर्यन्त चलूँगा और (जोर देकर) देखूँगा यह भारत वसुन्धरा कब तक आप जैसे अदूरदर्शी अहंमन्यों का बोझ ढोती है।

(एक ही झटके से बाहर हो जाता है। दोनों शिष्य अनुगमन करते हैं। पुरु आश्चर्य से देखता रहता है।)

दृश्य—२

(वन प्रदेश। एक फूस का साफ सुथरा आश्रम। चाणक्य ध्यानस्थ बैठे हैं। थोड़ी दूर पर दोनों शिष्य बैठे हैं तथा कुछ विचार-विमर्श भी कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त :—अनन्य साधना है गुरुदेव की।

सिंहरण :—और अटूट विश्वास भी; किन्तु........

चन्द्रगुप्त :—(बीच में ही) किन्तु क्या सिंहरण ?

सिंहरण :—इस विश्वास से कुछ फल-प्राप्ति भी संभव है अथवा साधना-साधना के लिये ही हो रही है।

चन्द्रगुप्त :—फल-प्राप्ति पर विचार हमको नहीं करना है सिंहरण। हम लोग गुरुदेव की साधना के लिये सर्मपित सुमन हैं। हमारा उपयोग उनके अनुसार ही होना है।

सिंहरण :—(शीघ्रता से) अच्छा अब मुझे अपना गुल्म सजाकर झेलम की ओर के मार्ग में आचार्य जी से मिलना है।

(ध्यानस्थ चाणक्य को प्रणाम करते हुये प्रस्थान।) गुरुदेव का ध्यान पूर्ण होता है। वह अपनी पादुकाओं को पहने चन्द्रगुप्त की ओर बढ़ते हैं। चन्द्रगुप्त शीघ्रता से बढ़कर प्रणाम करता है।)

चाणक्य :—आज तो यहीं प्रतीक्षा करनी है वत्स। कदाचित् मगध-नरेश नन्द की पुत्री नन्दिता अपने कुछ चुने हुये सरदारों के साथ हमारे इस यज्ञ में भाग लेने आयेगी।

चन्द्रगुप्त :—गुरुदेव ! पंचनद नरेश जैसे पराक्रमी राजाओं की तो ऐसी तन्द्रिल अवस्था है तो फिर इन नन्दिता देवियों आदि से क्या होने वाला है।

चाणक्य :—उसकी तन्द्रा को भंग करने का यही सब उपक्रम है वत्स !

चन्द्रगुप्त :—(साश्चर्य) तो क्या अब भी आप पुरु की सहायता करने में ही विश्वास रखते हैं। क्या उस पंचनद-नरेश के द्वारा की गई अवमानना आपको विस्मृत हो गई ?

चाणक्य :—(गंभीर होकर) चन्द्रगुप्त। यह पुरु की सहायता नहीं स्वदेश की सेवा है। पंचनद-नरेश साधन है। वह ही इस महायज्ञ का यजमान बनेगा। रहा अवमानना का प्रश्न ? तो यह स्वराष्ट्र-भक्ति है, साधना है, इसमें ये सभी प्रसंग बाधाओं के रूप में मानने चाहिये। इनकी उपेक्षा कर आगे बढ़ने वाला ही कुछ कर सकता है।

चन्द्रगुप्त :—(प्रश्न-सूचक मुद्रा में) गुरुदेव ! यदि हम लोग अपनी एक स्वतंत्र सेना का गठन करें तो कैसा रहेगा ?

चाणक्य :—(समझाते हुये) स्वतन्त्र सैन्य-संगठन हो सकता है वत्स; किन्तु उसके लिये समय, शक्ति, धन और पात्रता चाहिए। इनमें से कुछ को छोड़कर क्या अन्य सभी कुछ अपने पास है ? इनको जुटाने में पर्याप्त समय भी अपेक्षित होगा, जो अपने पास अभी नहीं है। अलक्षेन्द्र का आक्रमण अत्यंत निकट है। अब तो केवल नंदिता, अलका और मालव गणराज्य के वीरों की टुकड़ियों के द्वारा ही पुरु को विजय श्री का वरण कराना होगा।

चन्द्रगुप्त :—भगवन् ! क्या हम विश्वास करें कि, नन्द जैसे विलासी राजा की पुत्री इस अहैतुकी कर्म में लगेगी।

चाणक्य :—पंक से पंकज भी हो सकता है वत्स। फिर मानव तो अपने चिर पुरातन संस्कारों का संग्रही है। पता नहीं किसके कौन से संस्कार कब जाग्रत हो जायँ। क्यों ठीक है न !

चन्द्रगुप्त :—(आश्वस्त होकर) समझ गया गुरुवर। (सहसा घोड़ों की टापों से वातावरण गूँजने लगता है। दोनों उसी दिशा में कान लगाकर सुनते हैं।)

चाणक्य :—(प्रसन्न होकर) कदाचित् नंदिता आ गई ! (एक छोटे, चुस्त, उत्साह-पूर्ण गुल्म के साथ पुरुष-वेश में नंदिता का प्रवेश।)

नंदिता :—(खड्ग उठाकर) युग-पुरुष आचार्य चाणक्य की जय। (सभी सैनिक जय-घोष करते हैं। चाणक्य अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं तथा विश्राम का संकेत देते हैं। संकेत पाते ही सभी यथा स्थान बैठ जाते हैं। नंदिता चन्द्रगुप्त और चाणक्य के साथ विचार-विमर्श करने लगती है। कुछ ही पलों में चाणक्य स्पष्ट रूप से संकेत देने लगते हैं।)

चाणक्य :—अब हम लोगों को झेलम की तलहटी की ओर बढ़ना है। मार्ग में अलका का दल भी मिलेगा। सिंहरण अपने अत्यन्त पराक्रमी वीरों के साथ कुछ ही दूरी पर प्रतीक्षा कर रहा है। अब शीघ्रता करनी चाहिये।

नन्दिता :—यह अलका कौन है ऋषिवर !

चाणक्य :—देशद्रोही आंभीक की बहन और तुम्हारे ही समान देश-भक्त वीर-बाला।

नन्दिता :—(प्रसन्न होकर) अब तो निश्चय ही हमारी विजय होगी।

चाणक्य :—अवश्य होगी। अब शीघ्रता करनी चाहिये। (सभी का ससैन्य प्रस्थान)

दृश्य—३

(झेलम अपने यौवन में है। सघन घन आकाश में छाये हैं। पंचनद-नरेश महाराज पुरु की विशाल सेना व्यूहाकार खड़ी है। कभी-कभी बड़े-बड़े बूँद गिर कर पंचनद-नरेश का अभिषेक कर देते हैं। दिन चढ़ आया है; किन्तु मेघाच्छन्न आकाश से अभी भगवान् भास्कर की रश्मियों के कोई चिन्ह प्रगट नहीं हो पा रहे हैं। महाराज पुरु स्वयं ही सेनापति का भार वहन कर रहे हैं; इस कारण सैनिकों में अपूर्व उत्साह है। तभी एक महाकाय गज के कसे हुये सिंहासन पर खड़े होकर पुरु अपनी सेना को सम्बोधित करते हैं।)

पुरु :—वीरो ! आज चिर-प्रतीक्षित घड़ी आई है। हमको अपने पराक्रम का परिचय दूर देश से आये हुये उस तथाकथित बहादुर सिकन्दर को देना है। उसको समझाना है कि यह भारत है। यह पंचनदों से सिंचित और हिमाद्रि से आवेष्टित वसुन्धरा है। इस पर दर्प से नहीं, मस्तक नीचा करके आना होता है। आज का सैन्य-संचालन मैं स्वयं करूँगा।

(बीच में ही तुमुल-ध्वनि के साथ महाराज पुरु की जय का समवेत स्वर। विश्वास है कि विजयश्री हमारे चरण चूमेंगी।)

(दूर की एक पहाड़ी के पीछे से चाणक्य पुरु का सन्देश ध्यान पूर्वक सुन रहे हैं।)

चाणक्य :—(वितृष्णा से) कैसा अहंमन्य वीर है।

(दोनों सेनायें आमने-सामने डट जाती हैं। भीषण युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। सहसा वीरवर पुरु और सिकन्दर का सामना होता है। सिकन्दर अपने सिर पर लौह-शिरस्त्राण धारण किये हैं। पुरु के व्यक्तित्व के समक्ष वह काफी ओछा लग रहा है; किन्तु अंगों में चुस्ती झलक रही है।)

पुरु :—(व्यंग्य से) आ गये विश्व-विजयी सम्राट ?

सिकन्दर :—(विश्वास पूर्वक) हाँ। पंचनद-नरेश।

पुरु :—द्वन्द्व में भी विश्वास है या सैनिक कटवाकर ही वीर बनते हो ?

सिकन्दर :—द्वन्द्व भी कर सकता हूँ।

पुरु :—(आवेश में) तो सिद्ध हो यवन-नायक। यह युद्ध-स्थल है। हमारी दुधारी रक्त-पान करना चाहती है। (सिकन्दर तलवार से वार करता है। पुरु बड़ी कुशलता से ढाल पर रोक कर उस पर झपटता है। सिकन्दर भाग खड़ा होता है।)

पुरु :—(क्रोध से) म्लेक्ष ! यह समरांगण है, नृत्य-बीथिका नहीं। इसमें शोणित की लाली से शरीर-सज्जा होती है, सुगन्धित अंगरागों से नहीं।

सिकन्दर—(भयभीत होकर भागता हुआ) पंचनद-नरेश ! यह भी रण-नीति है। सिकन्दर इसे अनुचित नहीं मानता।

पुरु :—(अट्टहास कर) रणनीति ? कहाँ पढ़ा है म्लेक्षनायक ? यह भारत है। अब भी भलाई इसी में है कि सेनाओं को वापस ले जाओ। मैंने माफ किया।
(सिकन्दर बिना उत्तर दिए तेजी से भागता है।)

पुरु :—(अपने प्रमुख गुल्म पति से) वीरों को विश्राम करने का आदेश प्रसारित कर दो सरदार ! देख लिया पराक्रम विश्व-विजयी अलक्षेन्द्र का। पंचनद-नरेश से लोहा लेना बच्चों का खेल नहीं।
(शीघ्रता के साथ सहसा चाणक्य प्रवेश करते हैं।)

चाणक्य :—पंचनद-नरेश ! विश्राम का आदेश इस समय उचित नही। यवन-सेना प्रत्याक्रमण-नीति का

सहारा ले रही है। तुरन्त दूसरी टक्कर के लिये सिद्ध होना चाहिये।

पुरु :—(आश्चर्य से) योगिराज आप यहाँ भी आ गये। अच्छा, आपकी बात ठीक लगती है। सरदार, यथाशीघ्र जितने गुल्म तैयार हो सकते हैं उन्हीं को व्यूहाकार सिद्ध होने दो।

(चाणक्य से)अधिक घबराने की बात नहीं महात्मन ! ये म्लेच्छ, वीर नहीं वेश्यायें हैं। चुटकी बजाते ही मकदूनियाँ की राह पकड़ेंगे।

चाणक्यः—(तीव्र स्वर में) महाराज ! शत्रु का बल कभी कम नहीं माना जाता और फिर समराङ्गण में !

पुरुः—आप देखें आचार्य कि, पराक्रम कहते किसे हैं। पुरु का वार सुमेरु के लिए भी असहनीय है।

चाणक्यः—(दूसरी ओर देखकर) महाराज यवन सेना बढ़ रही है और अपनी सेना शिथिल है।

[पुरु कुछ परेशान सा होकर एक ओर को बढ़ता है। चाणक्य अपने तैयार गुल्मों को संकेत देते हैं। युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। एक बार उखड़ी हुई पुरु-सेना सहायता पाकर फिर जमती है। चन्द्रगुप्त का पराक्रम दर्शनीय है। अनेक यवन यूथप खेत रहते हैं। सिकन्दर की सेना में भगदड़ मच जाती है। चाणक्य के द्वारा संकेतिक चन्द्रगुप्त की टुकड़ियाँ भागते हुये यवनों को धराशाई करने लगती हैं। उसी समय पुरु गर्जना करता हुआ कहता है।]

पुरुः—वीरो। निहत्थों और कायरों पर वार करना वीरता को लज्जित करना है। उन्हें भाग जाने दो।

चाणक्य :–(पुरु से) महाराज ! यवन धूर्त हैं। यह भी रण-नीति है। आततायी का वध शास्त्र सम्मत है।

पुरुः–(ध्यान न देते हुये)मैं आदेश देता हूँ कि भागते हुए यवनों पर वार बन्द किया जाये।

(यवनों का पीछा छोड़ दिया जाता है। सिकन्दर के शिविरों की ओर से अनेक पताकाएँ ऊँची हो जाती हैं।)

पुरु :—(सगार्व) यवन-नायक ने युद्ध-बंदी का आदेश प्रसारित कर दिया। वह समझ गया है कि भारतीय रक्त कितना लाल है। नायक सैनिको को विश्राम का आदेश दो।

पट - परिवर्तन

दृश्य–४

(शिविर में महाराज पुरु आसंदिका पर आसीन हैं। सैनिक वेश में उनका रूप और भव्य लग रहा है। बगल में ही आचार्य चाणक्य बैठे हैं।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल :—महाराज की जय हो। यवन नायक अलक्षेन्द्र का दूत आया है।)

पुरु :—अलक्षेन्द्र का दूत ! प्रवेश कराओ। (दूत झुक कर नमन मुद्रा में पत्र प्रस्तुत करता है। पुरु को पढ़ते हैं।

महाराजाधिराज पोरस !

सादर अभिवादन

यह पत्र मित्रता का है। हम आपके साथ मिलकर रहना चाहते हैं। आपकी वीरता ने मुझे प्रभावित किया है। मैं वीरों का हृदय से स्वागत करता हूँ। वस्तुतः भारत वीरों का देश है और आप तो उनमें भी सिरमौर हैं। आप अपनी इच्छा प्रकट करें।

स्नेहाकांक्षी

एलेक्जेण्डर

(ठहाका लगाता है और बिना चाणक्य की सलाह के ही दूत से कहता है।)

पुरुः—दूत ! अपने नायक सिकन्दर से कह देना कि

पुरु वीर हैं। उसने वीरत्व को सदा सराहा है। वैसे तो मुझे सिकन्दर में कोई वीरता नहीं दिखाई दी, परन्तु शरणागत के रूप में हम उसका स्वागत करते हैं। साथ ही मित्र भी बनाते हैं। जाओ, यह मेरा उत्तर है।

(दूत सिर झुकाकर प्रस्थान करता है।)

चाणक्यः—महाराज ! आपने अनर्थ कर दिया।

पुरुः—क्यों आचार्यवर !

चाणक्यः—सिकन्दर मैत्री के योग्य नहीं है। युद्ध-काल उसका प्रमाण है। उसके साथ मित्रता घातक होगी।

पुरुः—आचार्य प्रवर ! हम भारतीय हैं। साँपों को दूध भी पिलाते भी हैं और कुचलते भी·········।

(बीच में ही)

चाणक्यः—किंतु महाराज। उपयुक्त समय की पहचान भी तो हमारा धर्म है। दूरदर्शिता का भी अपना महत्व है।

पुरु :—ऋषिवर ! दूरदर्शिता की आवश्यकता नहीं वह आता है। आने दीजिए। मित्र बनना चाहता है। बनने दीजिए। जब युद्ध की इच्छा करेगा, तब लड़ भी लिया जायेगा।

चाणक्य :—किन्तु आपकी मित्रता से उसे भारत में प्रवेश का स्वर्ण अवसर मिल जायेगा।

पुरु :—किन्तु हम तो अब वचन-बद्ध हो चुके हैं, ऋषिवर !

चाणक्य :—कूटनीति में वचनों का महत्व कम, सिद्धि का अधिक होता है।

पुरु :—हम क्षत्रिय हैं आचार्य ! अब टल नहीं सकते।

चाणक्य :—(खीझकर और विरक्त से होकर) मत टलिए महाराज ! फिर से ताना-बाना बुनना होगा। (ऊपर देखकर) नियन्ता। पता नहीं, क्या चाहता है तू।

(प्रस्थान)

पुरुः—(उठकर) आचार्यवर ! गुरुदेव !···········

(चाणक्य अदृश्य हो जाता है)

पट-परिवर्तन

दृश्य-५

(निर्जन वन में)

चाणक्य :—(स्वगत) पंचनद—नरेश ने अलक्षेन्द्र से सन्धि कर ली है। वही अलक्षेन्द्र, जिसने सत्य को द्यूत क्रीडा का पाँसा माना है। न्याय को एक सुन्दर सा खिलौना और मानवता को एक परिवर्तनशील चोंगा।

(पद-चाप से, ध्यान-मग्न मुद्रा में ही उधर देखने लगते हैं। चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चन्द्रगुप्तः—(चरण-वंदन कर) सिंहरण को संदेश दे दिया है। गुरुदेव।

चाणक्य :—(स्नेह से)अन्यमनस्क से क्यों हो, वत्स!

चन्द्रगुप्त :—(उसी स्वर में) कुछ विशेष कारण नहीं गुरुदेव ! यों ही कुछ थकावट सी है।

चाणक्य :—थकावट मनः प्रसूत है या शरीर-जन्य ?

चन्द्रगुप्तः—कुछ मानसिक भी है गुरुवर !

चाणक्यः—(विचलित से होते हुए पूछते हैं) कैसे ?

चन्द्रगुप्तः—भगवन् ऐसा लगता है कि अखिलेश्वर की इच्छा कुछ दूसरी ही है। तो फिर हम लोग व्यर्थ में ही··············

चाणक्यः—(दृढ़ता से)सावधान चन्द्रगुप्त ! शिथिलता अविश्वास की जननी है। और अविश्वास लक्ष्य-प्राप्ति का शत्रु। राष्ट्र-सेवा और समाज संगठन जादू का खेल नहीं। इसमें जीवन खपाना पड़ता है तथा सफलता का

मोह छोड़ कर अनवरत रूप से असफलता की सीढ़ियों को पार करना पड़ता है। एक क्या अनेक आंभीक सरीखे गद्दार तथा पुरु के समान अहंमन्य मिलेंगे,व्यवधान डालेंगे। किन्तु क्या हमको उनके आधार पर बढ़ना है? क्या हमने किसी के सहारे से अपना पथ-निर्धारण किया है? क्या इतने दिन के सम्पर्क से तुमने यही सीखा है? झुण्ड में चलने का स्वभाव तो भेड़ का होता है राजकुमार सिंह सदा अकेला ही चलता है। क्या तुमने इस महान् यज्ञ की पूर्णाहुति इस अल्प सी समिधा और शाकल से मान ली थी? साहस न हो तो मार्ग बदल लो चन्द्रगुप्त अभी भी समय है। मुझे अकेला ही बढ़ने दो।

(चन्द्रगुप्त मौन होकर स्वीकृति सूचक मुद्रा में पैर पकड़ लेता है। चाणक्य शिष्य को गले लगाते हैं। मार्मिक वातावरण की क्षणिक शांति के बाद)

चाणक्य:—उठो वत्स! धैर्य का अश्व, विवेक की वल्गा और पुरुषार्थ का कवच धारण कर आगे बढ़ो। विजय तुम्हारी होगी, विश्वास रखो, डिगो मत।

(अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं)

चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

पट–परिवर्तन

"मर्यादाओं के अन्तर्गत होने वाली क्रिया नाम ही संयम है। भूखा मरना संयम नहीं, अपितु शरीर की आवश्यकता के अनुसार गुण और मात्रा में भोजन करना संयम है। बिलकुल न बोलना, यहाँ तक कि अत्याचारी के विरुद्ध आवाज भी न लगाना अथवा किसी को सत्परामर्श भी न देना संयम नहीं।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

"राष्ट्र के लिए राज्य है, राज्य के लिए राष्ट्र नहीं। इसी प्रकार राज-नीति के लिए राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करे अवांछनीय रहेगी।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

"हमारे यहाँ सम्राटों या लक्ष्मी-पुत्रों की तुलना में ऋषि-महर्षियों को अधिक महत्व दिया गया। बड़े–२ राजा इन महर्षियों के सम्मुख नतमस्तक होते थे। हमारे राष्ट्र की मूल प्रकृति अध्यात्म–प्रधान रही है। हम भौतिक समृद्धि के आकर्षक नगरों की ओट में इसे बदल नहीं सकते। यदि हमने अपनी मूल प्रकृति की अवहेलना करने की चेष्टा की तो हमारे राष्ट्र-जीवन में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न होंगी।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

★ हिमालय का उद्भव और विकास ★

(Origin and Development of Himalayas)

—राम निवास
एम०ए०, बी०एड्० आचार्य (भूगोल)

हिमालय का उद्भव :—

Origin of Himalayas : देश के सजग प्रहरी के रूप में स्थित नगराज हिमालय के विषय में जानकारी प्राप्त करना किस व्यक्ति की इच्छा नहीं होगी, इसीलिए ऋषियों ने कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरो तोय निधिवगाह्य,
स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्डः ।।
"कुमार संभव"

आज जहाँ हिमालय पर्वत है वहाँ आज से लगभग १२ करोड़ वर्ष पूर्व टेथीस (Tethys) सागर था। जिस प्रकार आज महाद्वीपों की रचना है वैसा न होकर सभी एक बड़े भू भाग पैन्जिया (Pangia) के अंग थे इसके मध्य में टेथीस महासागर था। उत्तर में अंगारा भूमि (Angraland) और दक्षिण में गोडंवाना लैंड (Gondwana land) थी।

मध्य के टेथीज सागर में नदियों द्वारा रजकण आदि पदार्थ इकट्ठा होता रहता था, नदियां उत्तर तथा दक्षिण से इसी सागर में गिरती थी। समय-२ पर पृथ्वी पर भूक्रान्तियाँ हुई जिससे उनके स्वरूप में परिवर्तन हुआ। भूशास्त्रियों के अनुसार तीन प्रमुख भूक्रान्तियां हुयीं, जिससे धरातल पर अनेक परिवर्तन हुये।

आज से लगभग २७.५ करोड़ वर्ष पूर्व कार्बोनिफरस काल में टेथीस सागर वाले क्षेत्र की ओर (उत्तर) में स्थित अंगारा भूमि का धक्का प्रारम्भ हो गया, जिसके परिणाम स्वरूप टेथीस सागर का धरातल मुड़ने लगा। इसका प्रभाव दक्षिण में स्थित गोंडवाना भूमि के पठारी भाग पर पड़ा। यह क्रिया, धीरे-धीरे अधिक होने लगी। आज से लगभग ११ करोड़ वर्ष पूर्व अंगारा भूमि की तरफ से दबाव तीव्र होने के कारण तथा गोण्डवाना भूमि के स्थित रहने के कारण टेथीस सागर का पदार्थ उठने लगा और उत्तरी टैथीस भू उन्नति उत्थान को प्राप्त हुई। इसके बाद ५ करोड़ वर्षों तक शान्ति रही लेकिन जलज शिलाओं का बनाना टैथीस सागर के अन्दर जारी रहा। आज से लगभग २.५ करोड़ वर्ष पूर्व भू क्रान्ति हुई और अंगारा भूमि का जोरदार धक्का टैथीस सागर को लगा, जिससे टैथीस सागर का उत्तरी भूअभिनतिजलज शिलाओं और पर्वत श्रेणियों के रूप में ऊपर उठ गयीं, जिससे टैथीस की अनेक भूअभिनतियाँ गहरी एवं विशाल हो गयी लेकिन नदियाँ मिट्टी से भरती रहीं। १० लाख वर्ष तक यह पदार्थ अवसाही शिलाओं के रूप में हो गया और धीरे-२ उत्थान होने के कारण मध्य हिमालय, ट्रांस-हिमालय और शिवालिक आदि पर्वत श्रेणियों का जन्म हुआ। इन पर्वतों के निर्माण के बाद हिमयुग प्रारम्भ हुआ जिससे तापमान हिमांक विन्दु से नीचे हो गया और अनेक जीव जन्तु नष्ट हो गये। तापमान धीरे-धीरे बढ़ने से हिम पिघलने लगा जिससे सिन्धु, सतलज, गंगा, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ निकलीं।

हिमालय का अन्तिम उत्थान १० लाख वर्ष पूर्व

हुआ, जिससे पीर पंजाल श्रेणी का उत्थान हुआ और पूर्व से पश्चिम तक हिमालय पर्वत के रूप में विस्तृत भूभाग में फैल गया ।

(Development of Himalayas) :

हिमालय का विकास:–भूकम्पों, तिब्बत की झीलों के बराबर भरने तथा हिमालय की नदियों की युवावस्था के बने होने के कारण यह पता लगता है कि हिमालय के निर्माण का कार्य पूर्ण नहीं हुआ है अपितु इसके अन्तराल में अभी भीषण प्रलय भरा पड़ा है ।

हिमालय पर्वत से निकलने वाली नदियाँ अरबसागर (सिन्धु सागर) और गंगासागर (बंगाल की खाड़ी) में आकर गिरती हैं । जिससे समुद्र के पेंदी पर मैदानी भाग का मलवा इत्यादि पदार्थ कई वर्षों से इकट्ठा होता आ रहा है । जिससे अन्दर ही अन्दर के दबाव के कारण टैथीस सागर की जलज शिलायें धीरे २ ऊपर उठ रही हैं इससे स्पष्ट है कि हिमालय पर्वत की ऊँचाई बढ़ रही है ।

दूसरा महत्व पूर्ण कारण यह है कि हिमालय के आस-पास के क्षेत्रों में एकाएक कम्पन आता है जिससे यह स्पष्ट परिलक्षित है कि यह भूभाग अस्थिर है, और इसका अभी तक सन्तुलन नहीं बन पाया है जिससे मालूम होता है कि अभी भी हिमालय के विकास का क्रम जारी है ।

तिब्बत के पठार की जो झीलें हैं वे–७०० और ९०० मीटर की ऊँचाई की बालू, कंकड़ और पत्थर के टीलों से घिरी हैं । जिससे हमेशा ककड़ पत्थर आदि पदार्थ इन झीलों में भरता जा रहा है । इसलिए दिन-प्रतिदिन हिमालय की ऊँचाई बढ़ती जा रही है ।

उपरोक्त परिवर्तन तथा हिमालय के विकास की अस्थिरता के कारण यह कहा जाता है कि हिमालय पर्वत श्रेणियाँ अभी भी ऊची उठ रही हैं ।

"राष्ट्र के सुप्त होने से ही सब प्रकार की खराबियाँ घर करती हैं । राष्ट्र के सुप्त होने से उसकी विभिन्न इकाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाली सत्तायें जैसे राज्य, पंचायत परिवार आदि सभी अनियन्त्रित और उच्छंखल हो जाती हैं । राष्ट्र भ्रष्ट हो सकता है । "प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं" वाली चौपाई सही उतरती है । किन्तु यदि राष्ट्र जाग्रत और दक्ष हो तो राज्य की प्रभुता मर्यादित रहती है । राज्य तो राष्ट्र का वकील है । कई बार वकील अपने मुवक्किल की ओर स पैरवी करते समय ऐसी भाषा में बातचीत करता है । मानों वही प्रार्थी है । ऐसा करना जरूरी होता है । वकालतनामा लिख दिया जाता है ; किन्तु यदि वकील ठीक काम न करे तो वकालतनामा बदला जा सकता है । यही बात राज्य के साथ भी है । राज्य के समस्त अधिकार राष्ट्र द्वारा ही प्रदान किए जाते हैं और यदि राष्ट्र जाग्रत न रहा तो राज्य उन अधिकारों का दुरुपयोग कर सकता है । राज्य यदि अनियंत्रित होकर राष्ट्र से समस्त सत्ताओं का अपहरण कर ले तो तानाशाही स्थापित हो जाती है, और राष्ट्र पंगु हो जाता है ।"

—पं० दीनदयाल उपाध्याय

'वार्षिक आख्या'

—प्राचार्य

इस विद्यालय की स्थापना गुरू पूर्णिमा १८ जुलाई, १९७० को स्वर्गीय पं० दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में इस उद्देश्य से की गई थी कि श्रेष्ठ भारतीय संस्कार देकर बालकों को राष्ट्र के योग्य नागरिक बनाया जाये। यह विद्यालय उन पब्लिक स्कूलों की कमी को पूरा करने का प्रयास है, जहाँ पढ़ाई का स्तर तो ऊँचा है, पर अध्ययन का माध्यम अंग्रेजी है तथा अंग्रेजी शिष्टाचार एवं रहन-सहन के अनुकरण पर बल दिया जाता है। इस विद्यालय में भारतीय संस्कारों पर बल देते हुये बालक के उचित चारित्रिक एवं सांस्कृतिक विकास तथा पढ़ाई के स्तर को समान वरीयता दी जाती है। यद्यपि अंग्रेजी का पाठ्यक्रम में अनिवार्य स्थान है, परन्तु अध्ययन-अध्यापन का माध्यम मातृ-भाषा हिन्दी ही है। अपना यह विद्यालय ब्रह्मावर्त सनातनधर्म महामण्डल की भूमि पर स्थिति है और इस भव्य भवन के निर्माण का पूरा श्रेय है, स्वर्गीया श्रीमती सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह को, जिन्होंने इसका पूरा व्यय वहन कर अपने निरीक्षण में ही इसको बनवाकर विद्यालय की प्रबन्ध-समिति को हस्तान्तरित किया और इस प्रकार अपने अप्रतिम विद्या-प्रेम का परिचय दिया।

यह विद्यालय कक्षा ६ से प्रारम्भ होकर पिछले ८ वर्षों में प्रगति करता हुआ आज पूर्ण विकसित वैज्ञानिक वर्ग में मान्यता प्राप्त हाई स्कूल के रूप में कार्य कर रहा है। प्रत्येक कक्षा में दो अनुभाग हैं और इस प्रकार विद्यालय के १० अनुभागों में छात्रों की संख्या ४११ है। इस विद्यालय को शासन के द्वारा विशिष्ट विद्यालय के रूप में कुछ विशेषताओं के आधार पर ही मान्यता दी गयी थी। जिनमें प्रत्येक छात्र पर व्यक्तिगत ध्यान प्रमुख है। इसी कारण हम कक्षा में निर्धारित संख्या से अधिक छात्र प्रविष्ट नहीं करते।

सर्व प्रथम १९७५ की हाईस्कूल परीक्षा में हमारा प्रथम ३० छात्रों का दल सम्मिलित हुआ था। इनका परीक्षाफल शत-प्रतिशत तो था ही परन्तु विशेषता यह थी कि कोई भी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ था। १७ प्रथम श्रेणी में, शेष १३ द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुये ४ ससम्मान उत्तीर्ण हुये अर्थात् ७५% या उससे अधिक अंक प्राप्त हुये थे। एक छात्र को पूरे प्रदेश में नवाँ स्थान प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् काल-चक्र कुछ ऐसा घूमा कि सारा देश ही एक विशेष प्रकार के वातावरण में चक्कर लगाने लगा और उसी आपत्तिकाल में अपना यह विद्यालय भी सरकार के कोप का भाजन हुआ। परिणामतः प्रबन्ध-कारिणी समिति उन्मूलित कर दी गई। अतिरिक्त जिला-धिकारी को वैतनिक प्रबन्धक नियुक्त किया गया और जो-जो दशाएं सरकारी विभागों में होती रहीं हैं वही दशा अपने इस विद्यालय की भी हुई। सन् १९७६ में कुल ६६ विद्यार्थी हाई-स्कूल की परीक्षा में बैठे, जिनमें

२४ प्रथम श्रेणी; ३५ द्वितीय श्रेणी; ३ तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुये तथा ४ अनुत्तीर्ण भी हो गये। परिणाम सुनकर बड़ा धक्का लगा; किन्तु उस समय किया ही क्या जा सकता था ?

१९७७ में भी हम वर्ष भर सरकारी तंत्र के ही अनुरूप चलाये जाते रहे, फिर भी आपातकाल का भूत कुछ-कुछ सिद्ध हो चुका था, अतः परीक्षा-परिणाम मनोनुकूल तो नहीं; किन्तु १९७६ की अपेक्षा कुछ ठीक रहा। इस वर्ष कुल ६१ विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए, जिनमें ३३ प्रथम श्रेणी में, २३ द्वितीय श्रेणी में, ३ तृतीय श्रेणी में तथा २ छात्र अनुत्तीर्ण रहे। इस बार ७५% और इससे ऊपर अंक पाने वाले छात्रों की संख्या ५ रही। आपातकाल की आँधी के केवल झोंके शान्त हुये हैं, अभी उस विभीषिका की विनाश लीला की क्षति-पूर्ति बाकी है। फिर भी हम इस बार ८१ छात्रों को परीक्षा में बैठाकर आशान्वित हैं कि परिणाम अच्छा रहेगा।

विद्यालय में पढ़ाने वाले आचार्यों की संख्या प्रधानाचार्य को मिलाकर १५ है। हमारे सभी आचार्य स्नातक अथवा परास्नातक (Graduates or Post Graduates) हैं। स्नातक अथवा परास्नातकों में भी १ परास्नातक को छोड़कर सभी प्रशिक्षित हैं। इस प्रकार जूनियर हाई स्कूल कक्षाओं में भी पढ़ाने वाले अध्यापक स्नातक अथवा परास्नातक ही हैं।

शिक्षा-विभाग द्वारा निर्धारित विषयों के अतिरिक्त छात्रों को उनकी विशेष अभिरुचियों के रूप में संगीत चित्रकला, बागवानी आदि का अभ्यास कराया जाता है। संगीत-शिक्षण के लिये हमारे विद्यालय को उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध संगीतकार श्रीमान् एस० एस० बोड़स की सेवायें सुलभ हैं। साधारण विषयों का स्तर ऊँचा रखने के उद्देश्य से हमने कक्षा अष्टम तक केन्द्रीय विद्यालयों के समान राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान परिषद (N.C.E.R.T.) द्वारा तैयार की गयी पाठ्य-पुस्तकों को विद्यालय के पाठ्यक्रम में रखा है।

अनुशासन की दृष्टि से सभी बच्चों को एक निर्धारित वेश में ही विद्यालय आना पड़ता है जिसमें ऋतु के साथ परिवर्तन कर दिया जाता है।

सहपाठ्य क्रिया कलाप भी शिक्षा के महत्वपूर्ण अंग हैं, ऐसा मानते हुए और बच्चों में उत्तरदायित्व तथा प्रजातान्त्रिक भावना से बच्चों की स्वशासित दो संस्थायें बालभारती (कक्षा ८ तक के छात्रों के लिये) एवं किशोर भारती (कक्षा ८ से ऊपर की कक्षाओं हेतु) गठित की गई हैं। उनके तत्वावधान में प्रति शनिवार को बारी-बारी से विभिन्न कार्यक्रम जैसे वाद-विवाद, अन्त्याक्षरी, काव्य-पाठ, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, निबन्ध प्रतियोगिता, कहानी प्रतियोगिता, महापुरुषों की जयन्तियां आदि आयोजित किये जाते हैं। एक 'नीराजन' नामक वार्षिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है जो बच्चों की रचनात्मक साहित्य प्रतिभा के विकास में सहायक होती है।

विद्यालय में छात्रों के स्वास्थ्य और शारीरिक दृष्टि से उन्हें नियमित व्यायाम, शारीरिक समता (पी० टी०) और योगासन कराये जाते हैं और साथ ही संध्या को प्रतिदिन सभी प्रकार के भारतीय एवं पाश्चात्य खेल जैसे कबड्डी, खो-खो, फुटबाल, हाकी, बैडमिन्टन, बाली-बाल, क्रिकेट, टेवल टेनिस इत्यादि खिलाये जाते हैं। उनके स्वास्थ्य की परीक्षा भी वर्ष में कम से कम दो बार एक चिकित्सक द्वारा की जाती है।

विद्यालय भवन के ऊपरी खण्ड में छात्रावास भी हैं, जिसमें आज कल ६५ छात्र हैं जिनकी देख-रेख एक मुख्य अधीक्षक तथा एक सहायक अधीक्षक करते हैं। ये लोग विद्यालय के आचार्य-मण्डल के ही सदस्य हैं, और छात्रावास में ही रहकर बच्चो के अनुशासन, स्वास्थ्य, भोजन, पढ़ाई, व्यायाम आदि की व्यवस्था के लिये उत्तरदायी हैं। आवासीय बच्चों में १५ स्थानीय हैं। शेष ४६ बाहर के हैं। विद्यालय भवन के पीछे विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म महाविद्यालय का तरण सरोवर है जिसका उपयोग हमारे छात्र भी समय-समय पर करते हैं। पानी की कमी के कारण उसका लाभ

अधिक नहीं उठाया जा रहा है। यदि विद्यालय का अपना नलकूप हो तो यह कमी दूर हो सकती है तथा उसके और भी उपयोग हो सकते हैं।

विद्यालय का पुस्तकालय एवं वाचनालय विकासशील है। उसमें लगभग रु० १००००/ के मूल्य की लगभग २५०० पुस्तकें हैं। वाचनालय में अवकाश के क्षणों में ज्ञानवर्द्धन हेतु २ दैनिक, ६ साप्ताहिक तथा १२ मासिक पत्र भी आते हैं। प्रतिदिन के मुख्य समाचार भी एक निर्धारित दीवाल-पटल पर लिख दिये जाते हैं।

पाठ्य तथा सहपाठ्य विषयों के अतिरिक्त विद्यालय की समय सारिणी में प्रतिदिन नैतिक शिक्षा अथवा सदाचार का प्रावधान है। प्रतिदिन प्रार्थना के पश्चात् नियमित पढ़ाई प्रारम्भ होने के पूर्व कक्षाचार्य नियमित रूप से कुछ समय बच्चों को सामान्य शिष्टाचार अथवा किसी नैतिक गुण अथवा किसी महापुरुष के जीवन के कोई प्रेरक प्रसंग बताते हैं साथ ही रामायण, गीता के कुछ पूर्व निर्धारित अंश बच्चों को कण्ठस्थ कराते हैं। अन्य विषयों की परीक्षा होती है। बच्चों के नैतिक विकास की दृष्टि से प्रत्येक मंगलवार को रामचरित मानस पर प्रवचन होता है। इसके लिये हम पं० हरिशंकर शर्मा, अवकाश प्राप्त अतिरिक्त शिक्षा निदेशक के अत्यन्त आभारी हैं जो लगभग प्रत्येक मंगलवार को अपना अमूल्य समय देकर हमारे छात्रों पर अच्छे संस्कार डालने में हमारी सहायता करते हैं।

प्रति वर्ष हमारे बच्चे दशहरे की छुट्टी में देशदर्शन के लिये यात्रा भी करते थे, किन्तु इस सत्र के अवकाश में कतिपय अवरोधों के कारण वे इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम से वंचित रह गए। आशा है आगामी सत्र में हम पुनः इसे प्रारम्भ कर सकेंगे।

बोर्ड की परीक्षा के अतिरिक्त शिक्षा विभाग द्वारा संचालित एकीकृत छात्रवृत्ति परीक्षा में भी जिसमें कक्षा ८ के छात्र बैठते हैं, इस वर्ष हमारे १६ छात्र छात्रवृत्ति पाने के अधिकारी घोषित हुए थे। श्री ब्रह्मावर्त सनातन धर्म महामण्डल द्वारा संचालित मानस-गीता परीक्षा में हमारे अनेक छात्र प्रविष्ट हुए। अभी तक उसका परिणाम घोषित नहीं हुआ है। परिणाम प्राप्त होने पर निश्चय ही हमारे बच्चे अच्छे स्थान अर्जित करेंगे।

अपने विद्यालय के छात्र जीवन-पर्यन्त देशभक्त एवं समाजोपयोगी बने रहें, इस दृष्टि को सामने रखते हुये 'तरुण-भारती' संस्था का भी गठन इस वर्ष हो गया है, जिसका संविधान आदि 'तरुण-नैवेद्य' खण्ड में इसी पत्रिका में है।

हमारे छात्रों के अभिभावकों की बड़ी इच्छा थी कि विद्यालय में इण्टरमीडिएट कक्षायें प्रारम्भ की जायें, क्योंकि उनके अनुसार जैसा वातावरण उनके बच्चों को यहाँ मिलता है वैसा कक्षा १० के पश्चात् अन्य स्थान पर मिलना कठिन ही है। अतः इस दिशा में हमने प्रारम्भिक प्रयास किया अवश्य था किन्तु परिस्थिति की प्रतिकूलता ने हमको उस दिशा में आगे नहीं बढ़ने दिया है। अब हम भविष्य में सब प्रकार अपने इस विद्यालय को प्रगति के सोपानों पर अग्रसर करेंगे, ऐसा विश्वास आपके सक्रिय सहयोग से हम सहज ही कर सकते हैं।

दशम कक्षा के छात्र, जो चौथी बार 'परिषद' की परीक्षा में प्रविष्ट हो रहे हैं ।

अनुक्रमांक	नाम	अनुक्रमांक	नाम
८११९०४	अभय सिंह	८११९३१	बृजेन्द्र नारायण पान्डे
०५	आदित्य प्रकाश भार्गव	३२	दीपक सक्सेना
०६	आदित्य नारायण अग्निहोत्री	३३	देवेन्द्र कुमार चौपड़ा
०७	अजय अग्रवाल	३४	धर्मवीर त्रेहन
०८	अजय मल्होत्रा	३५	हरिनाम सिंह सचान
०९	अजय कुमार गुप्त	३६	हेम कुमार जैन
१०	अजय सिंह गौतम	३७	कपिल कपूर
११	अजय कुमार मल्ल	३८	कौशल किशोर पान्डे
१२	अजित मिश्र	३९	कृष्ण कुमार चावला
१३	अनन्त किशोर सिंह	४०	मुकेश निगम
१४	अनिल कुमार खन्ना	४१	नरेन्द्र पान्डे
१५	अनिल सामन्त	४२	नवनीत कुमार
१६	अनिल कुमार राय चौधरी	४३	निशीथ खरे
१७	अंजनी कुमार रस्तोगी	४४	पूर्ण किशोर श्रीवास्तव
१८	अनूप कुमार शुक्ला	४५	प्रभात मिश्र
१९	अरुण कुमार चतुर्वेदी	४६	प्रदीप मल्होत्रा
२०	अरुण कुमार गुप्ता	४७	प्रदीप श्रीवास्तव
२१	अरुण प्रताप सिंह	४८	प्रवीन कुमार नारंग
२२	अरविन्द तिवारी	४९	राहुल वशिष्ठ
२३	अशोक कुमार सिंह	५०	राजीव दुबे
२४	आशुतोष शर्मा	५१	राजीव अग्रवाल
२५	अतुल कुमार गंगवार	५२	राजीव मेहता
२६	अतुल कुमार सिंह	५३	राजीव शर्मा
२७	अवनीन्द्र सिंह	५४	राजेन्द्र सिंह
२८	अविनीन्द्र सिंह चौहान	५५	राजीव बाजपेयी
२९	अवधेश कुमार गुप्त	५६	राजीव मिर्जा
३०	बृजेश कुमार मिश्र	५७	राकेश कुमार द्विवेदी

अनुक्रमांक	नाम
८११९५८	राकेश कुमार गुप्त
५९	रमेश चन्द्र जोशी
६०	रवि कुमार साहनी
६१	रवीन्द्र कुमार मिश्र
६२	रेवती रंजन खन्डेलवाल
६३	संदीप रस्तोगी
६४	संजय कुमार चक्रवर्ती
६५	संजय कुमार गुप्त
६६	संजय कुमार मिश्र
६७	संजय कुमार श्रीवास्तव
६८	संजय शर्मा
६९	संजय सिंह सचान
७०	संजय श्रीवास्तव
७१	संजीव गुप्ता
८११९७२	सन्तोष कुमार सारस्वत
७३	सतीश पालीवाल
७४	शशिराज पाल सिंह
७५	शिशिर दुबे
७६	शीतला प्रकाश शुक्ल
७७	सुधीर
७८	सुधीर कुमार सिंह
७९	वरद कृष्ण पान्डेय
८०	वेद प्रकाश
८१	विदु कुमार दत्त
८२	विजय आनन्द श्रीवास्तव
८३	विपिन कुमार सक्सेना
८४	विष्णु कान्त पान्डे

अपनी प्रबन्धकारिणी समिति

बैरिस्टर श्री नरेन्द्रजीत सिंह	—	अध्यक्ष
श्री शिव शरण शर्मा	—	उपाध्यक्ष
श्री वीरेन्द्र पराक्रमादित्य	—	मन्त्री
डा० जगमोहन गर्ग	—	सहमंत्री
श्री राम बालक मिश्र	—	सदस्य
श्री गौरी शकर भार्गव	—	,,
प्रो० राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया)	—	,,
श्री भाऊराव देवरस	—	,,
श्री धीरेन्द्रजीत सिंह	—	,,
श्रा इन्द्रजीत जैन	—	,,
श्री प्रेम चन्द्र गुप्त	—	,,
डा० भूषण लाल धूपड़	—	,,
श्री शन्तनु रघुनाथ शेंडे (कार्यवाहक-प्राचार्य)	—	,,
श्री प्रयाग सिंह (अध्यापक-प्रतिनिधि)	—	,,
श्री आनन्द प्रसाद वर्मा (,,)	—	,,

पं. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय

राष्ट्रं जागृयाम वयम्

कानपुर

नीराजन—परिवार :

- सहायक सम्पादक : ज्ञानेन्द्र शर्मा, दीपक राजे
- छात्र सम्पादक : नवनीत कुमार, नीरज कुमार, राजन रावत
- मुखपृष्ठ—सज्जा : आनन्द वर्मा
- सम्पादक : ओम् शङ्कर

नवीन प्रिन्टर्स, गोविन्द नगर, कानपुर